॥ श्रीहरिः॥

अयोध्याकाण्डमें आये हुए प्रकरणोंकी सूची

॥ श्रीहरिः ॥

अयोध्याकाण्डके कुछ शब्दों और विषयों आदिकी तालिका

केवटके भाग्य

अति आनंद उमगि अनुरागा। चरन सरोज पखारन लागा॥
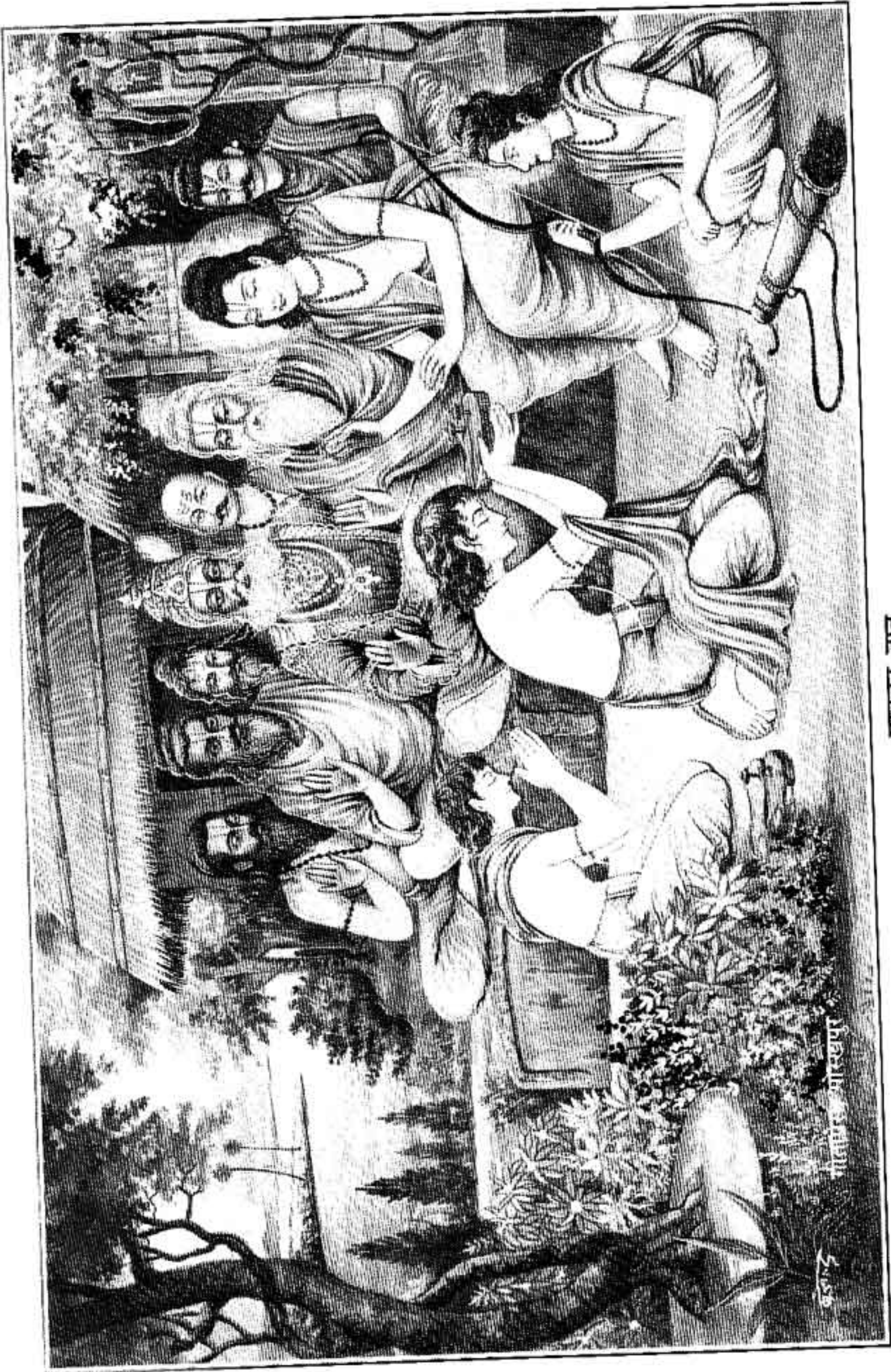
पादुका-दान

॥ श्रीः ॥

ॐ नमो भगवते श्रीमते रामानन्दाचार्याय।

श्रीमद्रामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये, श्रीमते रामचन्द्राय नमः।

ॐ नमो भगवत्या अस्मदाचार्यायै श्रीरूपकलादेव्यै।

श्रीसन्तगुरुभगवच्चरणकमलेभ्यो नमः।

ॐ नमो भगवते मङ्गलमूर्तये कृपानिधये गुरवे मर्कटाय श्रीरामदूताय सर्वविघ्नविनाशकाय क्षमामन्दिराय शरणागतवत्सलाय श्रीसीतारामपदप्रेमपराभक्तिप्रदाय सर्वसंकटनिवारणाय श्रीहनुमते।

ॐ साम्बशिवाय नमः। श्रीगणेशाय नमः। श्रीसरस्वत्यै नमः।

परमाचार्याय श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासाय नमः।

श्रीरामचरितमानसाखिलटीकाकर्तृभ्यो नमः।

श्रीमानसपीयूषान्तर्गतनानाविधभावसूचकमहात्मभ्यो नमः।

श्रीमानसपीयूषान्तर्गतनानाविधभावाधारग्रन्थकर्तृभ्यो नमः।

सुप्रसिद्धमानसपण्डितवर्यश्रीसाकेतवासिश्रीरामकुमारचरणकमलेभ्यो नमः।

श्रीरामाय नमः, श्रीभरताय नमः, श्रीलक्ष्मणाय नमः, श्रीशत्रुघ्नाय नमः।

भरतं श्यामलं शान्तं रामसेवापरायणम्।
धनुर्बाणधरं वीरं कैकेयीतनयं भजे॥

मानस-पीयूष

श्रीगणेशाय नमः
श्रीजानकीवल्लभो विजयते

श्रीरामचरितमानस

द्वितीय सोपान

[* अयोध्याकाण्ड—राज्याभिषेक-प्रकरण]

श्लोक

यस्याङ्के † च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके
भाले बालविधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट्।

---

* श्रीमद्गोस्वामीजीके मूल ग्रन्थमें काण्ड और उनके नाम बाल, अयोध्या आदि नहीं हैं। उन्होंने सप्तकाण्डोंको सप्त सोपान कहा है—'एहि महँ रुचिर सप्त सोपाना', 'सप्त प्रबंध सुभग सोपाना'। और, इसीके अनुसार उन्होंने 'प्रथम सोपान' 'द्वितीय सोपान' आदि नाम लिखे हैं। जहाँ अन्य रामायणोंमें 'बालकाण्ड', 'अयोध्याकाण्ड' आदि नाम शीर्षकमें दिये गये हैं। रामचरितमानसके बहुत-से प्रकाशकोंने इस काण्डका नाम अयोध्या वा अवधकाण्ड लिखा है और रामचरितमानसकी जगह तुलसीकृत रामायण नाम दिया है।

† १-राजापुरकी पोथी और काशिराजकी रामायणपरिचर्यामें 'यस्याङ्के' पाठ है। यही सबसे प्राचीन पाठ माना जाता है। पं० रामगुलाम द्विवेदीजीकी संवत् १९४५ की छपी हुई प्रति, भागवतदासजी और काशी नागरी-प्रचारिणीसभाकी प्रतिमें 'वामाङ्के' पाठ लिया गया है। सम्भव है कि पुनरुक्तिके विचारसे 'यस्याङ्के' से 'वामाङ्के' पाठको उत्तम मानकर यह पाठ रखा गया हो, पर इसमें पुनरुक्तिका दोष नहीं है।

२- पं० रामकुमारजी लिखते हैं कि दूसरे चरणमें 'यस्य' फिर आया है। दो बार एक ही शब्दका कोई

सोऽयं भूतिविभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा
शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्रीशंकरः पातु माम्॥ १ ॥

शब्दार्थ—**यस्य**=जिसके। **वाम**=बाएँ, बाईं। **अङ्क**=गोद, अँकवार, अङ्ग, देहका भाग। **च**=और। **विभाति**= भलीभाँति शोभित वा दीप्तिमान् है, सुशोभित है, विराजमान है। **भूधर**=पृथ्वीको धारण करनेवाला, पर्वत। **भूधरसुता**=हिमाचलपर्वतकी कन्या, पार्वती। **देवापगा**=देव+आपगा=देवनदी, सुरसरि, गङ्गाजी। **बालविधुः**= अमावस्याके पीछेका नया चन्द्रमा, शुक्लपक्षकी द्वितीयाका चन्द्रमा। **गरल**=विष। **यस्योरसि**=(**यस्य**+**उरसि**) जिसके वक्षःस्थल वा छातीपर। **व्यालराट्**=व्याल+राट्=सर्पराज, शेषजी। **सोऽयं**=(**सोऽयम्, सः**+**अयम्**) वही ये, ऐसे वे। **भूति**=विभूति, भस्म-राख। **भूतिविभूषणः**=भस्म ही जिनका आभूषण (गहना) है, भस्मसे विभूषित अर्थात् जिनके शरीरपर श्मशानकी भस्म लगी हुई शोभा पा और दे रही है। **सर्वाधिपः**=सबके राजा वा स्वामी अर्थात् पालनकर्ता। **सर्वदा**=सदैव, सर्वकालमें। **सर्वदा सर्वाधिपः**=तीनों कालोंमें, चराचरके अधिरक्षक। **शर्वः इति**—शब्दकल्पद्रुममें इसका अर्थ यों लिखा है—'**शर्वः—पुं०** (**शृणाति सर्वाः प्रजाः संहरति प्रलये संहारयति वा भक्तानां पापानि। 'शॄ कृ + गॄ शॄ द्रु भ्यो वः' उणादिकोशे १। १५५ इति वः**)।' अर्थात् जो प्रलयमें सब प्रजाओंका संहार करता है अथवा भक्तोंके पापोंका संहार करता है। इसका प्रयोग दन्त 'स' से भी होता है। विष्णुसहस्रनाममें '**शर्वः सर्वः**' दोनों आये हैं और शब्दकल्पद्रुमकार इसका प्रयोग दन्त्य 'स' से भी मानते हैं। पुनः, **सर्वः**=सब चराचरमात्र आपका ही रूप है।—(बैजनाथजी)=सब कुछ आप ही हैं। (पं० रा० कु०) **सर्वगतः**=सर्वव्यापक, सबके अन्तर्यामी, सब कुछ जिसके अन्दर समाया हुआ है। **शिवः**=कल्याण-स्वरूप। **शशिनिभः**=(शशि+निभः=कान्ति, प्रकाश, चमक-दमक, प्रभा, आभा)=चन्द्रमाके सदृश गौरवर्ण; चन्द्रमें तेजःस्वरूप, यथा—'**यदादित्यगतं तेजो जगद् भासयतेऽखिलम्। यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ**

प्रयोजन नहीं है। पार्वतीजी वामाङ्गमें विराजती हैं ही, यथा—'बामभाग आसन हर दीन्हा' अतः 'वामाङ्के' पाठ उत्तम है।

३-विनायकी टीकाकारने 'वामाङ्के' पाठ लिया है और लिखते हैं कि—'वामाङ्के' पाठान्तर 'वामाङ्गे' का अर्थ बाएँ अङ्गमें ऐसा होता है सो भी समीचीन है, कारण शिवजीने पार्वतीजीको अपना आधा अङ्ग ही बना लिया है, अतएव उनको 'अर्धनारीश्वर' कहते हैं, अर्थात् शिवजीका वह स्वरूप जिसमें आधा (दाहिना) अङ्ग शिवजीका और आधा (वाम) अङ्ग पार्वतीजीका है। इस आशयको बालकाण्डमें तुलसीदासजी यों लिख आये हैं—'हरषे हेतु हेरि हर ही को। किय भूषन तियभूषन ती को॥' अर्थात् महादेवजी पार्वतीजीके हृदयका आशय समझ ऐसे प्रसन्न हुए कि वे पतिव्रताओंमें शिरोमणि पार्वतीजीको अपने शरीरमें धारणकर 'अर्धनारीश्वर' बन बैठे। रसमञ्जरीमें और भी कहा है [यह नायिका-भेदका अनूठा ग्रन्थ है। इसके रचयिताने मङ्गलाचरणहीमें अनुकूल नायक श्रीशंकर गिरिजारमणका ऐसे माधुर्यभावमें वर्णन किया है जिसका आस्वादनकर रसिक-शिरोमणि कवीन्द्रगण अति चकित होंगे—महात्मा गोस्वामीजीने इसी विचित्र चित्रको रामायण भित्तिपर उतारकर सारे संसारको अपनी चित्रकारीका नगीना नमूना दर्शन कराया है—(रणबहादुरसिंह)]

> 'आत्मीयं चरणं दधाति पुरतो निम्नोन्नतायां भुवि
> स्वीयेनैव करेण कर्षति तरोः पुष्पं श्रमाशंकया।
> तल्पे किञ्च मृगत्वचा विरचिते निद्राति भागैर्निजै-
> रित्थं प्रेमभरालसां प्रियतमामङ्गे दधानो हरः॥ (रत्नावली नाटक)

अर्थात् भूमिके ऊँच-नीच होनेके भयसे अर्धनारीनटेश्वर श्रीशिवजी अपने पुरुष-स्वरूपका पाँव (दाहिना) पहिले आगे रखते हैं तथा पार्वतीरूपी अपने बाएँ अङ्गको श्रम न हो इस हेतु अपने ही हाथसे (दाहिने हाथसे) वृक्षके फूल तोड़ते हैं और मृगछालाके विस्तरपर अपने ही अङ्गके बल (दाहिने करवट) सोते हैं, इस भाँति परिपूर्ण प्रेमसे शिथिल अपनी प्राणप्यारी पार्वतीको पुरारिने अपने अङ्गहीमें धारण कर लिया।

तत्तेजो विद्धि मामकम्॥' (गीता १५। १२)। निभ विशेषणका अर्थ तुल्य, समान, सदृश होता है और संज्ञाका अर्थ वह है जो प्रथम ही दिया गया। **पातु माम्**=मेरी रक्षा कीजिये।

अन्वय—**यस्याङ्के भूधरसुता विभाति, यस्य मस्तके देवापगा (शोभते), यस्य भाले बालविधुः (राजते), यस्य गले गरलं च, यस्योरसि व्यालराट् च, सः, अयं भूतिविभूषणः सुरवरः सर्वदा सर्वाधिपः शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्रीशङ्करः सर्वदा मां पातु।**

अर्थ—जिनके (बाएँ) अङ्ग वा गोदमें हिमाचलनन्दिनी श्रीपार्वतीजी, मस्तकपर गङ्गाजी, ललाटपर द्वितीयाका चन्द्रमा, कण्ठमें हालाहल विष और वक्षःस्थलपर सर्पराज सुशोभित हैं, ऐसे वे भस्मसे विभूषित देवताओंमें श्रेष्ठ सबके सर्वकालमें स्वामी, सबके संहारकर्ता और भक्तोंके पापोंके हर्ता, सर्वगत, कल्याणस्वरूप, चन्द्रमाके सदृश कान्तिवाले श्रीशङ्करजी सदा मेरी रक्षा करें॥ १॥

नोट—१-मानसके आचार्य जान ग्रन्थकारने यहाँ ग्रन्थकी 'निर्विघ्न-परिसमाप्ति-हेतु स्वविषयक आशीर्वादात्मक मङ्गलाचरण किया है।'— (रा० प्र०) किसी महानुभावने लिखा है कि अयोध्या और अरण्यकाण्डोंके भी प्रारम्भ करनेवाले पहले ही श्लोक शिवजीकी वन्दनामें कहे गये हैं। इस विशेषतामें यह स्पष्ट व्यञ्जना दिखायी पड़ती है कि शिवजीको गुरु माननेके कारण ही कदाचित् आप-से-आप उनकी वन्दना इन काण्डोंमें श्रीरामजीकी वन्दनासे भी पूर्व हो गयी हो। भारतीय भक्तोंने अपने सामने सदा यही सिद्धान्त रखा है—'*भक्ति भक्त भगवंत गुरु चतुर नाम बपु एक।*' इसी सिद्धान्तके अनुसार एक स्तोत्रमें वे शिवजीको न केवल '*निर्गुणं निर्विकारं*' कहते है, वरं '**विष्णुविधिवन्द्यचरणारविन्दम्**' भी कहते हैं। दूसरेमें उनको '**रामरूपीरुद्र**' कहा है और एक अन्य स्तोत्रमें हरि और शिवकी एकत्र स्तुति की है और उसका नाम 'हरि-संकरी-मन्त्रावली' रखा है।

जिन विशेषणोंसे श्रीशङ्करजीकी वन्दना की गयी है वे सब सहेतुक हैं—नोट २ देखिये। इन विशेषणोंको देकर कवि श्रीशिवजीका विघ्ननिवारणमें सामर्थ्यवान् होना दर्शित करते हैं। कैसे समर्थ हैं कि अनेक सम-विषम, सुख-दुःखकारी, भले-बुरे, परस्पर-विरोधी इत्यादि पदार्थोंको अङ्गमें सदैव धारण करते हुए भी आप सदैव सावधान हैं, किसीका वेग आपमें व्याप्त नहीं होने पाता।

इस काण्डमें बहुत-सी सम-विषम बातें और सुख-दुःखके प्रसंग ठौर-ठौरपर आवेंगे जो चित्तको एकदम दहला देनेवाले हैं—जैसे राज्याभिषेककी तैयारी और हुआ वनवास, केकयीकी कठोरता और वरदान इत्यादि। उनके वेगके वशीभूत हो जानेसे कथाकी निर्विघ्न-समाप्ति असम्भव-सी जान पड़ती है। अतः इन विघ्नोंसे अपने चित्तकी रक्षा करानेके लिये, विघ्नोंके उपस्थित रहते हुए भी उनके वशमें न होनेवाले और सदा सबका कल्याण करनेवाले श्रीशिवजीकी वन्दना इन विशेषणोंसे की है।

टिप्पणी—१ (पं० रा० कु०)—१ '**यस्याङ्के**……' इति। (क) सदा स्थिर सूचित करनेके लिये '*भूधरसुता*' नाम दिया। शुद्धता दिखानेके लिये '*देवापगा*' (देवताओंकी नदी अतएव दिव्य) कहा! इस प्रकार यहाँ गोस्वामीजीने दोनों शक्तियोंसहित श्रीशिवजीका मङ्गलाचरण किया। (गङ्गाजी भी शिवजीकी शक्ति हैं, यथा—'*देहि रघुबीरपद प्रीतिनिर्भर मातु, दास तुलसी त्रासहरनि भवभामिनी।*' (वि० १८) कोई-कोई महानुभाव यहाँ '**यस्याङ्के**' और '**श्री-शङ्कर**' शब्दोंसे श्रीशिव और श्रीपार्वतीजी इन दोकी वन्दना मानते हैं।) (ख) '**भाले बालविधुः**' चन्द्रमा द्विजराज है अथवा अमृतस्रावी है, इससे उसे मस्तकका तिलक बनाया। (इससे दीन, हीन, क्षीणजनोंको आश्रय देनेवाला जनाया। स्कन्दपु० माहेश्वर केदारखण्डमें लिखा है कि राहुका सिर कटनेपर वह चन्द्रमाको निगलनेको दौड़ा तब चन्द्रमा भागकर शङ्करजीकी शरणमें गया। उन्होंने यह कहते हुए कि 'डरो मत' उसे जटाजूटमें रख लिया। तबसे चन्द्रमा उनके मस्तकपर शोभित है।) (ग) '**गले च गरलम्**'—विषको कण्ठमें रखा; क्योंकि उदरमें जाय तो ताप उत्पन्न करे, उसे ऊपर (बाहर) धारण करें तो सबकी मृत्यु करे, अतएव इस अवगुणीको कण्ठमें छिपा रखा है। (इससे जनाया कि बड़े परोपकारी हैं, सदा प्रजा और प्रजापतियोंके हितमें तत्पर रहते हैं,

उनका दुःख टालनेके लिये स्वयं दुःख झेला करते हैं। पुनः हृदयमें इससे न रखा कि उसमें श्रीसीतारामजी विराजमान हैं, यथा—'**हर हृदि मानस बालमरालं।**' (३। ११। ८) वहाँ रखनेसे अपने इष्टदेवको कष्ट पहुँचेगा। कण्ठमें रखनेसे सब बातें बन गयीं।) (घ) '**भूतिविभूषणः**' कहकर पतितपावन जनाया; क्योंकि '***भव अंग भूति मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी***' है।

टिप्पणी २—(क) इस श्लोकमें शिवजीके सगुण और निर्गुण दोनों स्वरूपोंका वर्णन है। '**यस्याङ्के····· भूतिविभूषणः सुरवरः**' सगुणरूप है। '**सर्वाधिपः सर्वदा शर्वः सर्वगतः·····**' निर्गुणरूप है। पुनः, (ख) आधे श्लोकमें शिवजीके आश्रितोंकी शोभा कही और आधेमें श्रीशिवजीकी। [यह गुप्त भाव साधारणतया देख नहीं पड़ता। पर है ऐसा ही, आधेमें '**भूधरसुता विभाति**', '**देवापगा विभाति**', '**भाले बालविधु-र्विभाति**', '**गले गरलं विभाति**', '**उरसि व्यालराड् विभाति**' है। श्रीपार्वतीजी, गङ्गाजी, बालविधु, गरल और व्यालराट् सब आपके आश्रित हैं। इस तरह अर्धश्लोकमें इनका ही वर्णन है। शेष अर्धमें केवल शिवजीकी शोभा है] ऐसा करके सूचित करते हैं कि इस काण्डमें आधेमें श्रीरामचरित है और आधेमें भक्तशिरोमणि श्रीभरतजीका चरित कहा गया है। दोहा १५६ तक श्रीरामचरित है और दोहा १७० के आगे दोहा ३२६ तक १५६ दोहोंमें श्रीभरतचरित है। बीचके १४ दोहे १५६ के आगे १७० तक भरतागमन और पितृक्रियासे सम्बन्ध रखते हैं। [ये १४ दोहे श्लोकके '**सः शङ्करोऽयं सर्वदा मां पातु**' में आ गये। (बाबा रामदास)]

नोट २—विशेषणोंके और भाव—(क) बैजनाथजी—'पर्वत जड़ है, उसकी पुत्री बाएँ अङ्गमें और देवता चेतन हैं उनकी नदी शीशपर शोभित है। यह सम-विषम है, इनको स्वाभाविक लिये हैं। वा दो स्त्रियोंका संग महा उत्पातका कारण है सो दोनोंको धारण किये हुए भी सावधान हैं। चन्द्रकी शीतलता और गरलकी उष्णता नहीं व्यापती। भस्मसे त्याग, सुरवरसे ऐश्वर्य और सर्वाधिपसे पालक, तीनों होते हुए सावधान हैं। '***सर्वगतः***' से अगुणत्व और '***शशिनिभः***' से सगुणत्व इत्यादि सम-विषमसहित हैं।'

(ख) पंजाबीजी—पृथ्वी परोपकारिणी और क्षमारूपा है, वैसे ही पर्वत भी यथा—'***संत बिटप सरिता गिरि धरनी। परहित हेतु सबन्ह कै करनी॥***' ये पर्वतराजकी कन्या हैं, अतः अवश्य परोपकारिणी होंगी, इन्हींके द्वारा रामचरित प्रकट हुआ। गङ्गाजी भगवान्‌के नखसे निकलीं, अतः शीशपर धारण किया—ऐसे उपासक। अल्पकलावाले चन्द्रको प्रतिष्ठा देनेके विचारसे माथेपर स्थान दिया—ऐसे दीनदयाल अथवा इस विचारसे कि अग्निनेत्रके तेजसे उपासकोंको कष्ट न पहुँचे, वहीं चन्द्रमाको स्थान दिया। कण्ठमें विष धरकर संसारभरका उपकार किया। हृदयपर सर्पराजको धारणकर भजन-निष्ठता दिखायी कि सर्पराजको निरन्तर हरियश-गानमें तत्पर जान सदा हृदयसे लगाये रहते हैं। पुनः, विष और सर्पसे सामर्थ्य जनाया। '***श्रीशङ्करः***' अर्थात् श्री और शं (कल्याण) के करनेवाले हैं।

(ग) विनायकी टीका—महात्माओंके समीप भले और बुरे दोनोंका निर्वाह हो जाता है। जैसे श्रीशिवजीके समीप पार्वतीजी और गङ्गाजी (दो सौतें), चन्द्रमा और सर्प किंवा विष, भस्म और ऐश्वर्य, संहार और कल्याण इत्यादि सदा बने रहते हैं। (इसी भावका एक दोहा दीनजीका है—'***धनुष बान धारे लखत दीनहिं होत उछाह। टेढ़े सूधे सबन्ह को है हरि हाथ निबाह॥***')

(घ) शिवजीके इन सब विशेषणोंके भाव बालकाण्डमें कई बार आ चुके हैं, इससे यहाँ नहीं लिखे जाते।

नोट—३- यह श्लोक 'शार्दूलविक्रीडित वृत्त' का है। इस छन्दमें मङ्गल करके जनाते हैं कि समस्त विघ्नोंके उद्वेगसे रक्षा करनेमें आपका पराक्रम शार्दूल-(सिंह वा एक पक्षी जो हाथीतकको पंजेसे दबा लेता है) के समान है। आप मेरी रक्षा करें। पुनः श्रीरामजीका मङ्गलाचरण बालकाण्डमें और यहाँ श्रीशिवजीका मङ्गलाचरण शार्दूलविक्रीडित छन्दमें करके यह भी जनाया है कि आप दोनों ही समस्त विघ्नोंसे मेरी रक्षा करनेको एक समान समर्थ हैं। इस छन्दके लक्षण बा० मं० श्लोक ६ में देखिये।

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले* वनवासदुःखतः।
मुखाम्बुजश्रीरघुनन्दनस्य मे सदाऽस्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा॥ २॥

शब्दार्थ—**प्रसन्नताम्**=प्रसन्नताको। **या**=जो। **गताभिषेकतस्तथा**=(गता अभिषेकतः तथा) प्राप्त हुई अभिषेकसे और। **अभिषेक**=विधिपूर्वक मन्त्र पढ़कर कुश और दूबसे जल छिड़ककर अधिकार प्रदान, राज्यपदपर निर्वाचन, राजतिलक। **श्री**=शोभा, दीप्ति, कान्ति। **मे**=मुझको। **सदाऽस्तु**=सदा+अस्तु=सदा होवे। **सा**=वह। **प्रदा**=देनेवाली। **मञ्जुल**=सुन्दर, अर्थात् सांसारिक नहीं, किन्तु जो भगवत्-सम्बन्धी परमार्थकी ओर ले जानेवाली है।

अन्वय—**या अभिषेकतः प्रसन्नतां न गता तथा वनवासदुःखतो न मम्ले, सा श्रीरघुनन्दनस्य मुखाम्बुजश्री मे सदा मञ्जुलमङ्गलप्रदा अस्तु।**

अर्थ—रघुकुलको आनन्द देनेवाले श्रीरामचन्द्रजीके मुखारविन्दकी जो 'श्री' राज्याभिषेक-(की खबर-) से न तो प्रसन्नताको प्राप्त हुई और न वनवासके दुःखसे मलिन ही हुई, वही (मुखकमलकी कान्ति) मुझको सदा सुन्दर मङ्गलोंको देनेवाली हो।

नोट—१- मानसके आचार्यकी वन्दना करके ग्रन्थके प्रतिपाद्य श्रीरघुनाथजीका मङ्गलाचरण करते हैं। यह मङ्गलाचरण वस्तु-निर्देशात्मक है। यह श्लोक 'वंशस्थवृत्त' का है। इसके चारों चरणोंमें १२-१२ अक्षर होते हैं। इसके प्रत्येक चरणमें वर्णोंका क्रम यों रहता है—जगण (।ऽ।), तगण (ऽऽ।), जगण (।ऽ।), रगण (ऽ।ऽ) यथा—'**यस्यां त्रिषट् सप्तममक्षरं स्याद्ध्रस्वं सुजङ्घे नवमं च तद्वत्। गत्वा विलज्जीकृतहंसकान्ते तामिन्द्रवज्रां ब्रुवते कवीन्द्राः। उपेन्द्रवज्रा चरणेषु सन्ति चेदुपान्त्यवर्णा लघवः कृता यदा। मदोल्लसद्भ्रूजितकामकार्मुके वदन्ति वंशस्थमिदं बुधास्तदा॥**' (श्रुत-बोध) अर्थात् जिसमें तीसरा, छठा और सातवाँ तथा नवाँ अक्षर ह्रस्व हो उसे इन्द्रवज्रा छन्द कहते हैं। यदि इस छन्दके चारों चरणोंमें ग्यारहवें और प्रथम चरणका पहला अक्षर लघु हो तो यही छन्द वंशस्थवृत्त कहा जायगा। अगला मङ्गलाचरण 'नीलाम्बुज—' इन्द्रवज्रावृत्तका है।

* 'मम्ले' पाठ राजापुरकी पोथीमें है और भागवतदासजी, द्विवेदीजी आदिने इसीको प्राचीन माना है। काशिराजकी रामायण-परिचर्यामें 'मम्लौ' पाठ है। 'म्लै' धातुका प्रयोग प्रायः परस्मैपदमें ही होता है। इसीसे 'मम्ले' की ठौर 'मम्लौ' पाठ किया गया है। परंतु यह वस्तुतः वाल्मीकिजीकी (तुलसीदासजीके रूपमें) रचना है और आर्षप्रयोग है। यह कोई बात नहीं कि कोई ऋषि एक परस्मैपदका प्रयोग आत्मनेपदीके रूपमें न कर सके। इस बातको सभी मान रहे हैं कि इस समय गोस्वामीजीकी रामायण वेदवाक्यके सदृश प्रमाण मानी जाती है। बिलायतमें भी देखिये शैक्सपियरके पठन-पाठनके लिये एक पृथक् व्याकरण ही बनायी गयी। फिर ऐसे बड़े ऋषिको हम व्याकरणके भीतर कैद करें तो हमारी भूल नहीं तो क्या है? मानसहंसकार इस (व्याकरणसे बहुत ही विभक्त होनेके दोष) का समाधान यह करते हैं कि 'उस विभक्तताकी त्रुटि ईश-भक्तिसे प्रपूरित हो जानेके कारण 'एको हि दोषः' इस कालिदासकी उक्तिके अनुसार वह दोष, दोष ही नहीं समझा जा सकता'। पुनः वे लिखते हैं कि—'जान-बूझकर गोसाईंजीने यह दोष क्यों रहने दिया होगा, इसका ठीक-ठीक कारण बतलाना कठिन है। हमारा अनुमान है कि बिलकुल नीचेके दर्जेके समाजमें भी लोकशिक्षा त्वरित और सुगम होनेके उद्देश्यसे प्रेरित होकर गोसाईंजीने जान-बूझकर इस दोषकी ओर बिलकुल ही आँख मीच ली'।

बाबू शिवनन्दनसिंहजी त्रुटियोंके बारेमें लिखते हैं—'लेखकोंकी भूलका संदेह हो सकता है ...... दूसरे ऐसी-ऐसी तुच्छ बातें ध्यान देनेयोग्य नहीं। 'गोसाईंजी लेखनीका चाक घुमाकर अपनी धुनमें लगे हुए छन्दों और पदोंकी नाना प्रकारकी वस्तुएँ बनाते गये हैं; यदि उनमें किसीका आकारादि कुछ टेढ़ा-मेढ़ा हो गया हो तो इसके लिये आपत्ति क्या? आकारादिमें किञ्चित् कसर ही सही, कविताका चटक रंग चढ़ाकर आपने उन्हें चटकदार तो बना दिया है न? उसके चमक-दमकके सामने किसीकी दृष्टि ही भला उधर कब जा सकती है और इनपर दृष्टि करना ही अल्पज्ञता है। और किसी सुन्दर सोहावनी पुष्पवाटिकामें किसी पेड़-पौधेकी कोई शाखा वा पत्ती, स्वभावतः या किसीकी असावधानीसे टेढ़ी, कुबड़ी या कहीं कुछ भंग होनेपर भी, यदि सुन्दर फूलोंसे लहलहा रही हो तो क्या कोई उस आमोदप्रद छटासे आनन्दित न होकर उसकी शाखा और पत्तीको निहारने लगेगा? ......'

नोट—२-इस काण्डमें राज्याभिषेक और वनवास दोनोंका वर्णन है। अतः दोनोंके अनुकूल यह ध्यान गोसाईंजी लिख रहे हैं। 'राज्याभिषेक और वनकी प्राप्तिमें 'श्री' एक-सी रही तो हमारे राज्याभिषेक और वनयात्रा-वर्णनकी निर्विघ्न-समाप्ति एकरस क्यों न करायेगी? अर्थात् जो सदा एकरस आनन्दस्वरूप हैं, जिनको सुख-दुःख एक समान हैं, उनकी कृपा होनेसे इस काण्डकी पूर्ति निर्विघ्न होगी, हमारा चित्त मलिन न होने पायेगा—ऐसा दृढ़ विश्वास कर कवि श्रीरघुनन्दनजीकी उसी छविका ध्यान कर इस कथाके वर्णनमें सामर्थ्यकी प्रार्थना कर रहे हैं। (रा० प्र०) आप सदा एकरस हैं और सदा हैं, अतः दूसरोंको भी सदा मङ्गल देंगे। (पं० रा० कु०)

नोट—३-बैजनाथजी—वनगमनके वियोगसे सभी पुरवासी दुःखमें डूब गये हैं, परन्तु श्रीरघुनाथजीका मुखारविन्द प्रफुल्लित ही रहा। अतः उस प्रसन्न मुखका अवलोकन बराबर होते रहनेसे मेरे मनमें भी दृढ़ता और उत्साह बना रहेगा और लीलावर्णनमें उदासीनता न आने पावेगी। इस विचारसे इस ध्यानका मङ्गलाचरण करते हैं।

नोट ४— यहाँ दो बातें कही गयीं। राज्याभिषेकसे प्रसन्नता और वनवाससे म्लान न होना। दो गुण कहकर चाहते हैं कि हमारा चित्त भी दोनों प्रसंगोंके वर्णनमें एक-सा उत्साहित रहे।

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितवामभागम्।

पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम्॥ ३॥

शब्दार्थ—**अम्बुज**=कमल। **समारोपित**=(सम्+आरोपित) स्थापित, सुशोभित, विराजमान। **भागम्**=भागमें। भाग=दिशा, ओर। **पाणौ**=दोनों हाथोंमें। **पाणि**=हाथ। **सायक**=बाण। **महा**=सर्वश्रेष्ठ, बहुत बड़ा। महासायक अर्थात् अमोघ अक्षय बाण, यथा—*'जिमि अमोघ रघुपति के बाना'* (सुं०) **चारु**=सुन्दर, दीप्तिमान्। **'चारु चाप'** अर्थात् शार्ङ्गधनुष जो श्रीरामचन्द्रजीका मुख्य आयुध है। इसीसे उनको शार्ङ्गधर भी कहते हैं। **नमामि**=नमस्कार वा प्रणाम करता हूँ।

अर्थ—नील कमलके समान श्याम (साँवले) और कोमल जिनके अंग हैं, श्रीसीताजी जिनकी बायीं ओर सुशोभित हैं और जिनके दोनों हाथोंमें क्रमशः अमोघ बाण और सुन्दर शार्ङ्गधनुष हैं, उन रघुकुलके स्वामी श्रीरामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ३॥

टिप्पणी—इस श्लोकमें घर और वन दोनोंके चरित्र वर्णन किये गये हैं। (**'सीतासमारोपितवामभागम्'**—पूर्वार्ध घरका चरित्र है। **'पाणौ महासायकचारुचापम्'** वनचरित्र है) वैसे ही इस काण्डमें श्रीरामचन्द्रजीके घर और वन दोनों चरित्रोंका वर्णन है। पुनः इसमें सातों काण्डोंका क्रम है।

नोट—१ इस श्लोकमें सशक्ति श्रीरघुनाथजीकी वन्दना की गयी है। यह श्लोक 'इन्द्रवज्रा-वृत्त' का है। इसके चारों चरणोंमें ११-११ अक्षर होते हैं। वर्णोंका क्रम यह है—तगण (ऽऽ।), तगण, जगण (।ऽ।), गुरु, गुरु। इस श्लोकके तीन चरणोंका क्रम यही है, चौथा चरण उपेन्द्रवज्राका है, क्योंकि उसका प्रथम वर्ण लघु है। इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्राके मिलावटसे १४ वा १६ वृत्त उत्पन्न होते हैं उन्हें 'उपजाति' कहते हैं। यह श्लोक शाला और हंसीसे मिला वृत्त है।

नोट—२ पूज्यपाद गोस्वामीजीने इस श्लोकके एक-एक चरणमें संक्षिप्तरूपसे एक-एक लीला सूचित करते हुए चार चरणोंमें समग्र रामचरितकी झलक दिखाते हुए श्रीरघुनाथजीकी वन्दना की है। इसमें श्रीरामचन्द्रजीके बाल, विवाहित, वनवासी और राज्यप्राप्त-स्वरूपोंकी क्रमशः वन्दना की गयी है। समग्र रामायण इन चारों चरणोंमें कह दी है—

(१)—**'नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गम्'**—यह प्रथम चरण है। इस पदसे बालरूप रामचन्द्रजीकी वन्दना की। इस पदमें जन्म और बाल-लीला सूचित कर दी। क्योंकि कोमल अङ्ग जन्मपर और बाल्यावस्थाहीमें होते हैं।

(२)—'**सीतासमारोपितवामभागम्**'—यह दूसरा चरण है। इसमें श्रीसीताजीको वामभागमें विराजमान कहकर विवाह-लीला और विवाहितदूलहरूप रामचन्द्रजीकी वन्दना की गयी। यहाँतक पूर्वार्द्ध श्लोकमें बालकाण्डका चरित्र समाप्त किया।

(३)—'**पाणौ महासायकचारुचापम्**'—यह तीसरा चरण है। इसमें श्रीराम रघुवीरके वीररूपकी वन्दना है। इस चरणमें वनवासी श्रीरामरूपकी वन्दना हुई। इसमें रण-लीला अर्थात् अयोध्याकाण्डसे लेकर लङ्काकाण्डतकका चरित आ गया।

(४)—'**नमामि रामं रघुवंशनाथम्**'—यह चतुर्थ चरण है इसमें राज्यासीन राजा श्रीरामकी वन्दना है। रावणवधके पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी राज्यपर बैठे। यह 'रघुवंशनाथ'से जनाया। इस पदसे उत्तरकाण्डका चरित सूचित कर दिया।

नोट-३—बैजनाथजी लिखते हैं कि इस श्लोकमें तुरीयादिक चारों अवस्थाओं और चारों प्रकारके भक्तोंके ध्यान दिखाये हैं और यह श्लोक 'तीन बीज रामनाम गर्भित मन्त्रमयी श्लोक है'। '**श्यामलकोमलाङ्गम्**' कहकर बाल-लीलारूप वा बाल-स्वरूप वर्णन किया जो तुरीयावस्थामें रहनेवाले विज्ञानधाम प्रभुका ध्यान है। यह ध्यान ज्ञानी भक्तोंका है। यथा—'*बंदउँ बालरूप सोइ रामू। मायाधीस ज्ञान गुन धामू॥*', '**इष्टदेव मम बालक रामा**', '**त्वमेकमद्भुतं प्रभुं निरीहमीश्वरं विभुम्। जगद्गुरुं च शाश्वतं तुरीयमेव केवलम्।**' (३-४) पुनः मार्कण्डेय ऋषिको इसी बालमुकुन्दस्वरूपका दर्शन हुआ था। यथा—'**करारविन्देन पदारविन्दं मुखारविन्दे विनिवेशयन्तम्। वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं बालं मुकुन्दं मनसा स्मरामि॥**' इति। यह ध्यान ऋग्वेदका सिद्धान्त है। और यह चरण '***ओमिति*** प्रणव-गर्भित चरण है।'

(२)—'**सीतासमारोपितवामभागम्**' में ब्याह-लीला-धाम-वर्णन सुषुप्ति अवस्थाका स्वरूप जिज्ञासु भक्तोंका ध्यान है। यह 'सामवेद' का सिद्धान्त है। यह चरण '***रामिति***' बीज-गर्भित है।

(३)—'**पाणौ महासायकचारुचापम्**' में रावणवध आदि लीला-वर्णन नरनाट्यादि स्वप्नावस्था है। यह वीररूप अल्पकालके लिये हुआ, अतः स्वप्नावस्थाके सदृश है। वीररूप आर्तभक्तोंका ध्यान यजुर्वेदका सिद्धान्त है—'*राजिवनयन धरे धनुसायक। भगत बिपति भंजन सुखदायक॥*' यह चरण '**सोऽहमिति**' गर्भित है।

(४)—'**नमामि रामं रघुवंशनाथम्**'में '**रघुवंशनाथ**' पद देकर राजसिंहासनासीन उदाररूप जाग्रत्-अवस्थाका ध्यान अर्थार्थी भक्तोंका कहा। यह अथर्ववेदका सिद्धान्त है।

नोट—४ बालकाण्डका मङ्गलाचरण ७ श्लोकोंमें किया गया। उसका भाव वहाँ दिया जा चुका है। इस काण्डमें तीन श्लोक दिये गये। इसका कारण यह कहा जाता है कि अवधसे श्रीसीतारामलक्ष्मणजी ये तीन वनको गये और तीनों साथ रहे। आगे अरण्यकाण्डमें सीताहरण होनेपर केवल राम-लक्ष्मण दो ही मूर्ति रह गये, इससे अरण्य और किष्किन्धामें दो ही श्लोकोंमें मङ्गलाचरण है। सुन्दरकाण्डमें श्रीसीताजीका पता लग गया अतः वहाँसे फिर तीन-तीन श्लोकोंमें मङ्गलाचरण किया गया। यह क्रम गोस्वामीजीकी गुह्य उपासनाका अनूठा और गूढ़ रहस्य प्रदर्शित कर रहा है।

दो०—श्रीगुरु चरन सरोज रज निज मन मुकुर सुधारि।
बरनउँ रघुबर बिमल जसु जो दायक फल चारि॥

शब्दार्थ—**सरोज**=कमल। **रज**=धूलि, पराग। **मुकुर**=दर्पण, शीशा। **बिमल**=निर्मल, स्वच्छ, उज्ज्वल, बेदाग। **दायक**=देनेवाला।

अर्थ—श्रीगुरुजीके चरणकमलोंकी रजसे अपने मनरूपी दर्पणको साफ करके मैं 'रघुवर'का निर्मल यश वर्णन करता हूँ जो (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष इन) चारों फलोंका देनेवाला है।

टिप्पणी—१ '*श्रीगुरु चरन सरोज रज*...' [(क) श्रीगोस्वामीजीने गुरुवन्दनाप्रसंगमें '***श्री***' विशेषण प्रायः बराबर दिया है, वैसे ही यहाँ भी उन्होंने '***श्री***' विशेषण दिया है। पुनः भाव कि] रघुवरचरित श्रीमान्

हैं जो चारों पदार्थोंके दाता हैं, इसीसे गुरुचरणमें 'श्री' विशेषण दिया क्योंकि गुरुचरणरज भी श्रीमान् हैं 'श्री' एवं 'सर्वश्रेय' के देनेवाले हैं, यथा—*'जे गुरुचरन रेनु सिर धरहीं। ते जनु सकल बिभव बस करहीं॥'* (२। ३। ५) श्रीमान् गुरुचरणरजसे मनको निर्मल करते हैं जिसमें श्रीमान् (श्रीके देनेवाले) रघुवरचरित मनमें आवें। (ख) *'सरोज'* विशेषण दिया क्योंकि कमलमें 'श्री' का निवास है। 'श्री' के सम्बन्धसे *'सरोज'* भी कहा। (ग) *'श्रीगुरु चरन सरोज रज'* अर्थात् गुरुचरणरज जो शोभा और ऐश्वर्यसे युक्त है। अर्थात् गुरुपदरजमें पुण्य है (उनके द्वारा अपने मनको सुधारकर)। (घ) *'मन मुकुर सुधारि'*—अर्थात् अज्ञान वा विषयरूपी मैलको दूर करके। विषय ही मनका मैल है, यथा—*'काई बिषय मुकुर मन लागी।'* (ङ) बालकाण्डमें श्रीरामयश कहने लगे तब श्रीगुरुपदरजसे विवेक-नेत्र निर्मल किये थे। यथा—*'गुरुपदरज मृदु मंजुल अंजन। नयन अमिअ दृग दोष बिभंजन॥ तेहि करि बिमल बिबेक बिलोचन। बरनौं रामचरित भवमोचन॥'* (१-२) इस काण्डमें भक्तके चरितको कहना प्रारम्भ करने जाते हैं, इसीसे पुनः गुरुचरणरजका सेवन करते हैं। वहाँ विवेक-नेत्रको निर्मल किया और यहाँ मनको। रघुवरयश निर्मल है अतः उसका वर्णन करनेके लिये मनको उसके वर्णनके योग्य बनाया। मनको विषयसे रहित किया जिसमें रघुवरके सब चरित मनमें आवें। निर्मल यशके गानके लिये मनका निर्मल होना आवश्यक है। (चिकनाहट रजसे मलनेसे शीघ्र दूर होती है, अतः रजसे शुद्ध करना कहा।)

इस काण्डके प्रारम्भ करते ही ग्रन्थकारका चित्त रह-रहकर गोते खाने लगता है। मङ्गलाचरणसे उनके हृदयकी खलबलीकी थाह मिलती है। वे अपनेको इस काण्डके चरित लिखनेमें बारम्बार असमर्थ पा रहे हैं। अतः बारम्बार उससे पार पानेका प्रयत्न कर रहे हैं। श्रीरामराज्याभिषेकमें विघ्न हुआ देख उनका अति कोमल हृदय शोकमें मग्न हो जाता है—*'का सुनाइ बिधि काह दिखावा।'* कैसे पार लगेगा? अतएव समर्थ श्रीशङ्करजीसे रक्षाकी प्रार्थना करके उन्होंने फिर श्रीरघुनन्दनजूके मुखाम्बुजश्रीका आश्रय लिया। इतनेपर भी सन्तोष न हुआ तब श्रीगुरुपदरजकी शरण ली और कथा प्रारम्भ की।

'गुरुपदरज-वन्दना'—इति।

गुरुपदरजकी वन्दना बालकाण्डमें की गयी है अब पुनः इस काण्डमें की गयी, आगे फिर किसी काण्डमें नहीं पायी जाती। इसका क्या हेतु है? एक हेतु तो ऊपर लिखा गया, दूसरा इस दोहेके *'बरनउँ रघुबर बिमल जसु'* इस पदसे यह जान पड़ता है कि यहाँ श्रीभरतजीका निर्मल यश वर्णन करना है, यथा—*'नवबिधु बिमल तात जसु तोरा। रघुबर किंकर कुमुद चकोरा॥ उदित सदा अथइहि कबहूँ ना। घटिहि न जग नभ दिन दिन दूना॥'*' (२०९। १-२) ऐसे निर्मल यशका उल्लेख करना है। भागवतचरित अगम है और भरतजी तो भक्तशिरोमणि हैं, यथा—*'भगतसिरोमनि भरत तें जनि डरपहु सुरपाल।'* इनके चरित शारदा, शेष, गणेश, गुरु वसिष्ठ और जनकमहाराज-ऐसे विज्ञानियोंको भी अगम है। यथा—*'धरम राज नय ब्रह्मबिचारू। इहाँ जथामति मोर प्रचारू॥ सो मति मोरि भरत महिमाही। कहइ काह छल छुअत न छाहीं॥ बिधि गनपति अहिपति सिव सारद। कबि-कोबिद बुध बुद्धि बिसारद॥ भरतचरित कीरति करतूती। धरम सील गुन बिमल बिभूती॥'* (२८८। ४—७) *अगम सबहिं बरनत बर बरनी। जिमि जलहीन मीन गमु धरनी॥ भरत अमित महिमा सुनु रानी। जानहिं रामु न सकहि बखानी॥'* (२८९। १-२) *'भरत रहनि समुझनि करतूती। भगति बिरति गुन बिमल बिभूती॥ बरनत सकल सुकबि सकुचाहीं। शेष गनेस गिरा गमु नाहीं॥'* (३२५। ७-८)

अतः कविने दुबारा गुरुपदरजका आश्रय लिया। स्मरण रहे कि अपने गुरुमहाराजसे गोस्वामीजीने यह रामचरितमानस पाया है—*'मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सो सूकरखेत।'* (१। ३०) *'तदपि कही गुरु बारहिं बारा।'* और उनके चरणकमलोंका आपको बहुत बड़ा भरोसा है, यह बात गुरु-वन्दना-प्रकरण और यहाँ इस काण्डके आदिमें मङ्गल करनेसे सिद्ध ही है।

दूसरा प्रश्न यहाँ महानुभावोंने यह किया है कि 'गुरुपदरजसे तो मनको एक बार निर्मल कर चुके

थे, यथा—'*तेहि करि बिमल बिबेक बिलोचन। बरनौं रामचरित भवमोचन॥*' (१। २। २) अब उसमें क्या मल लग गया जिससे फिर साफ करना पड़ा?'

महानुभावोंने इन दोनों प्रश्नोंके उत्तर जो दिये हैं वे ये हैं—

(१) गौड़जी—बालकाण्डमें मानसकारने देववाणीमें शङ्कररूप गुरु और प्राकृतमें नरहरिरूप गुरुकी वन्दना मनकी मलिनता और कुटिलताको दूर करनेके लिये ही की है। उसी तरह मनके मुकुरको सुधारनेके लिये और भगवत्-चरितसे भी अधिक महत्त्वशाली और दुर्गम भागवत-चरितके यत्किञ्चित् वर्णनका सामर्थ्य मिले इसलिये रामचरितमानसके प्रथमाचार्य भगवान् शङ्करकी और द्वितीयाचार्य स्वामी नरहरिदासजीकी वन्दना की है। श्रीबेनीमाधवदासजीके प्रमाणसे भगवान् शङ्करने महात्मा नरहरिदासजीको रामचरितमानसकी कथा सुनाकर बालक 'रामबोला' को अपने पास लाकर पालन-पोषण और रामचरितमानस पढ़ाने-सुनानेकी आज्ञा दी। इस तरह रामचरितमानसकी गुरु-परम्परा यों हुई—भगवान् शङ्करके शिष्य नरहरिदास और नरहरिदासके शिष्य तुलसीदास। तुलसीदासजीने यहाँ इस तरह देववाणीमें प्रथमाचार्य शङ्करकी और प्राकृतमें द्वितीयाचार्य नरहरिदासजीकी वन्दना की है।

(२) गुरु शङ्कररूप ही हैं, यथा—'**वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम्।**' अतः शङ्करवन्दनाका सम्पुट दे उनसे इस काण्डकी कथाका वर्णन सुरक्षित किया है।

(३) वन्दन पाठकजी—श्रीभरतचरितको अगम जानकर कविने अपने मन-मुकुरको फिरसे सँवारा। अर्थात् निर्मलसे भी निर्मल किया।

(४) रामायणी रामदासजी— पूर्व (बालकाण्डमें रामयश-वर्णनके लिये) विवेक-विलोचन निर्मल किये थे, मनका निर्मल करना वहाँ नहीं कहा, यद्यपि यह गुण उसमें वहीं बता आये हैं, यथा—'*जन मन मंजु मुकुर मल हरनी।*' अब यहाँ मनको भी निर्मल करते हैं। दोनोंके निर्मल करनेकी जरूरत है। नेत्रसे बाह्य पदार्थ देख पड़ते हैं। विवेकनेत्र तो निर्मल हैं ही, अब मन भी निर्मल हुआ, इससे अपने हृदयमें सम्पूर्ण चरित देख पड़ेगा और श्रीरामस्वरूप भी देख पड़ेगा; क्योंकि '*मुकुर मलिन अरु नयन बिहीना। रामरूप देखहिं किमि दीना॥*' वह रामस्वरूप अयोध्याकाण्डमें भरतजीके पास है।

(५) बाबा हरिहरप्रसादजी—षट्शरणागतिमेंसे एक कार्पण्य शरणागति भी है। इसमें जीव अपनेको सदा दोषी मानता है, यथा—'*जद्यपि जन्म कुमातु तें मैं सठ सदा सदोस। आपन जानि न त्यागिहहिं मोहि रघुबीर भरोस॥*', *जद्यपि मैं अनभल अपराधी। भइ मोहि कारन सकल उपाधी॥*', '*बंचक भगत कहाइ रामके*' इत्यादि। गोस्वामीजीने यहाँ '*मन मुकुर सुधारि*' पदसे अपना कार्पण्य दर्शित किया है। देखिये देवर्षि परम भागवत नारदजी स्तुति करते हुए कहते हैं—'**पापोऽहं पापकर्माहं पापात्मा पापसम्भवः। त्राहि मां पापिनं घोरं सर्वपापहरो हरिः॥**' न नारदजीमें पापका लेश और न गोस्वामीजीके मन-मुकुरमें मैल।

नोट—१ '*रघुबर बिमल जस*' इति। बालकाण्डमें श्रीरामयश कहा गया, यथा—'*निज गिरा पावनि करन कारन रामजसु तुलसी कह्यो।*' (३६१) और इस काण्डमें श्रीरामयश और श्रीभरतयश दोनों कहा गया है, पर श्रीभरतयशको ही प्रधानता दी गयी है। कविने आदिमें '*रघुबर*' और अन्तमें '*भरत चरित करि नेम*…।' (३२६) शब्द देकर श्रीभरतजीको ही इस काण्डका प्रधान नायक सूचित किया है। किसी-किसी महानुभावका मत है कि इस काण्डमें केवल भरतचरित है, इसीसे फलश्रुतिमें '*भरतचरित करि नेम*' कहा गया है। पर बहुमत इस ओर है कि इसमें राम और भरत दोनोंके चरित और यशका वर्णन है। जितने दोहोंमें रामयश है, उतनेहीमें भरतयश।

'*रघुबर*' शब्द यहाँ सहेतुक है। यहाँ किसीका नाम न देकर एक व्यापक शब्द देनेका दोमेंसे कोई एक कारण हो सकता है। एक तो यह कि कविने जान-बूझकर यह पद यहाँ दिया। दूसरे यह कि कवि काण्डके प्रारम्भसमय असमञ्जसमें थे कि इसका नायक किसको बनावें, वे अभी निश्चय न कर सके थे कि भरतजी ही इसके नायक होंगे।

(१) *'रघुबर'* में श्रीराम, भरत दोनों आ जाते हैं। इतना ही नहीं; किंतु चारों भाइयोंको *'रघुबर'* कह सकते हैं और कविने अन्यत्र और भाइयोंके लिये इसका प्रयोग भी किया है, यथा—**'मायामानुषरूपिणौ रघुवरौ'** (कि० मं०)। *'नाम करन रघुबरनिके नृप सुदिन सोधाये'* (गी० १। ६) इसीसे *'रघुबर'* पद दिया। और यों भी कह सकते हैं कि इसमें चारों भाइयोंके चरित हैं, शत्रुघ्नजीका चरित इसी काण्डमें आया है। पर लक्ष्मणजीका यश रामयशके साथ है—*'रघुपति कीरति बिमल पताका। दंड समान भयो जस जाका॥'* और शत्रुघ्नजी भरतजीके अनुगामी हैं, उनका यश भरतयशके साथ है। इस प्रकार मुख्य यश दोहीका है, केवल भरतसे तात्पर्य होता तो इस व्यापक पदको न देते।

(२) आदिमें द्विविधाके कारण यह शब्द दिया। अन्तमें जब संदेह न रह गया तब इस पदका अर्थ स्पष्ट कर दिया। इस विषयपर 'मानस-हंस' के सम्पादक श्रीमन्त यादवशंकर जामदारका लेख पाठकोंके लिये उद्धृत किया जाता है—'मानस-हंस' पृष्ठ ७७।

इस दोहेका *'रघुबर'* शब्द बहुत ही समर्थ दिखता है। उसमें रामजी तथा भरतजी, इन दोनोंका एक समान अन्तर्भाव होता है। अनुमान होता है कि इस शब्दका प्रयोग दोहेमें सहेतुक किया गया है; क्योंकि इस काण्डके पूर्वार्धमें जितना रामजीका उत्कर्ष दिखलाया है उतना ही उत्तरार्धमें भरतजीका है।

वाल्मीकिजीने अपने रामायणमें भरतजीके प्रेमका यथार्थ स्वरूप नहीं दर्शाया था, इस कारण उनका हृदय तड़पता होगा। इसीलिये स्वभावतः आये हुए प्रसंगका लाभ उठाकर उन्होंने (तुलसीरूपमें) भरतजीके वर्णनमें सुधार करनेका निश्चय किया। परंतु यह काम उन्हें बहुत ही कठिन जान पड़ा होगा। ऐसा न होता तो उन्होंने प्रारम्भमें ही गुरुजीका मङ्गलाचरण न किया होता। काव्यारम्भमें जैसी मङ्गलकामना होती है वैसे ही यह हुई है। फिर ध्यान देनेकी बात है कि उनके अन्य काण्डोंमेंसे एकमें भी ऐसे मङ्गलकी योजना दिखायी नहीं देती। अयोध्याकाण्ड पढ़कर कोई भी सहज ही कह सकेगा कि गुरुप्रसादके बिना वाणीमें ऐसा प्रसादगुण आ नहीं सकता।

इस काण्डकी फलश्रुति ऐसी दी हुई है—*'भरत चरित करि नेम तुलसी जे सादर सुनहिं। सीयराम पद प्रेम अवसि होइ भवरस बिरति॥'*

एक तो *'भवरस बिरति'* की फलश्रुति ही किसी और काण्डकी नहीं है और फिर दूसरे, *'अवसि'* कहकर दिखलाया हुआ आत्मविश्वास और किसी भी फलश्रुतिमें नहीं दर्शाया गया है। एक प्रकारसे कहा जा सकता है कि प्रारम्भमें किये हुए गुरुजीके मङ्गलकी रामभक्ति और वैराग्य ही समर्पक फलश्रुति है।

एक विशेष बात यह भी है कि और दूसरे काण्डोंकी फलश्रुतिमें किसी-न-किसी प्रकारसे रामजीका माहात्म्य प्रमुखतासे दर्शाया गया है। परंतु यहाँ वैसा नहीं किया गया है। इस ऊपर निर्दिष्ट बातसे प्रश्न उत्पन्न होता है कि इस काण्डका नायक कौन है, रामजी अथवा भरतजी? सोरठेकी शब्द-रचनासे ऐसा जान पड़ता है कि हमारे समान ही गोसाईंजीके सामने भी यह प्रश्न था, यदि ऐसा न होता तो वे *'भरत चरित'* यह पद खास तौरपर यहीं क्यों डालते? अपनी मामूली रीतिके अनुसार उन्होंने *'राम चरित'* पद ही डाला होता। परंतु *'भरत चरित'* पद डाल देनेसे इस काण्डके उत्तरार्धके नायक उन्होंने भरतजी ही निश्चित किये और पूर्वार्धके श्रीरामजी।

टिप्पणी—२ *'रघुबर बिमल जस'* इति। (क) रघुबर बिमल यश वर्णन करता हूँ। यह यहाँ कहते हैं। और अरण्यकाण्डमें कहते हैं कि *'पुर नर भरत प्रीति मैं गाई।'* (३। १। १) *'मैं गाई'* से सिद्ध होता है कि गोस्वामीजीने इस (अयोध्याकाण्ड) को सबसे पृथक् करके स्वयं गाया है। इसमें किसीका संवाद नहीं रखा। मानसकी दस हजार चौपाईका चौथाई ढाई हजार चौपाईका यह काण्ड गोस्वामीजीके हिस्सेका है। यह दैन्यघाट है। अन्य सब काण्डोंसे इसमें अधिक विलक्षणता है (ये विलक्षणताएँ आगेकी प्रथम अर्धालीमें दिखायी गयी हैं)। (ख) *'बिमल जस'*—यशकी निर्मलता इसीसे सिद्ध है कि वक्ता-श्रोता दोनोंको चारों पदार्थोंका देनेवाला है। (ग) *'जो दायक फल चारि'*—अर्थात् बिना किसी अन्य साधनके केवल श्रवण-कीर्तनसे।

वन्दन पाठकजी—फल काण्डके अन्तमें होना चाहिये, परंतु कविने *'रघुबर बिमल जस'* का फल इस काण्डमें प्रथम ही दे दिया। इसका क्या कारण? उत्तर—यहाँ केवल भरत-चरितका वर्णन है। इसीसे फल प्रथम ही दिखाया गया। भरतजी भगवद्भक्त हैं। भागवत-यश तुरत फल देता है, यथा—*'देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ'* अतएव तत्काल फलदातृत्व गाया।

जब तें राम ब्याहि घर आये। नित नव मंगल मोद बधाये॥ १॥

शब्दार्थ—**ब्याहि**=ब्याह करके, विवाहित होकर। **नित**=(नित्य) प्रतिदिन। **मोद**=मानसिक आनन्द। **मंगल**=उत्सव, बाह्य आनन्द। **बधाये**=बधाइयाँ, मङ्गल अवसरका गाना-बजाना, मङ्गलाचार, मङ्गलगान, उत्सव, चहल-पहल।

अर्थ—जबसे रामचन्द्रजी ब्याह करके घर आये, तबसे नित्य नये-नये मङ्गल-आनन्द-उत्सव हो रहे हैं॥ १॥

टिप्पणी—१(क) अब विवाहान्तर प्रथम सोपानकी कथा है, जिसका मिलानपूर्वक उपोद्घात करते हैं। (ख) *'नित नव मंगल⋯'* मङ्गल हो रहे हैं, उनसे तज्जनित मोद हुआ और तज्जनित बधाई होने लगी। विवाहके पश्चात् उत्साह है, जैसे कि देवीपूजन, कंकणमोचन, गङ्गापूजन, श्रीरङ्गदेवपूजन इत्यादि, वे सब हो रहे हैं। ये सब मङ्गल हैं, यथा—*'सुदिन सोधि कल कंकन छोरे। मंगल मोद बिनोद न थोरे॥'* (१।३६०।१) *'नित नव सुख⋯।'* नित्य नवीन मङ्गलोत्सव होनेसे नित्य नवीन मोद होता है, नित्य नवीन बधाइयाँ बजती हैं, क्योंकि माताओंने जिन-जिन देव-पितृकी मानता (मन्नत) मानी थीं (कि इनके अनुकूल दुलहिनें मिलें तो हम यह-यह पूजा चढ़ावेंगी।) यह मनोरथ सिद्ध हो गया, यथा—*'देव पितर पूजे बिधि नीकीं। पूजी सकल कामना जी कीं।'* (१। ३५१) अब उन-उन देवताओंकी पूजा बड़े उत्साहसे नित्य होती है।

नोट—१- बालकाण्डमें गोस्वामीजीने जो मानसका रूपक बाँधा है उनसे ग्रन्थके सप्त काण्डोंको मानससरके सप्त सोपान (सीढ़ियाँ) कहे हैं, यथा—*'सप्त प्रबन्ध सुभग सोपाना।'* (१। ३७) घाटमें जब सीढ़ियाँ बनायी जाती हैं तो नीचेकी सीढ़ीको कुछ दबाकर तब दूसरी सीढ़ी बनायी जाती है। इस ग्रन्थमें प्रथम सोपानका सम्बन्ध दूसरेसे इस अर्द्धालीको देखकर मिलाना ही एक सीढ़ीपर दूसरीका जोड़ना है। बालकाण्डके ३६० दोहेके बाद *'आए ब्याहि रामु घर जब तें'* कहा है, उन्हीं शब्दोंको यहाँ पुनः दोहराया है—*'जब तें राम ब्याहि घर आये'* इस प्रकार अयोध्याकाण्डका जोड़ (सम्बन्ध) बालकाण्डसे मिलाया। विशेष *'सप्त प्रबंध सुभग सोपाना'* (१। ३७।१) में देखिये।

टिप्पणी— २-अयोध्याकाण्डमें विवाहकी बात लिखनेका भाव यह है कि जनकपुरकी जिन कन्याओंका विवाह जनकपुरमें न हुआ था उनके विवाह बारातके लौटनेपर अवधमें हुए, यह बात किसी रामायणमें लिखी है। उसीको यहाँ सूचित कर रहे हैं।

नोट—२- सातों काण्डोंसे इस काण्डकी रचना अति विचित्र और अनूठी है। इसकी कविता आद्योपान्त एक-सी मधुर, मनोहर है और कवित्व शक्तिकी पराकाष्ठा इसमें झलक रही है। इसमें प्रायः आठ-ही-आठ अर्धालियोंपर एक दोहा दिया गया है और २४-२४ दोहोंके पश्चात् प्रत्येक पचीसवें दोहेके स्थानपर एक हरिगीतिका छन्द और एक सोरठा दिया गया है। जिनमेंसे, केवल एक छन्दको छोड़कर अन्य सब छन्दोंमें कविने अपना नाम भी दिया है। (अर्थात् प्रत्येक छन्दमें 'तुलसी' का भोग है।) हरिगीतिका और सोरठाका नियम केवल एक ही जगह भंग किया गया है अर्थात् दोहा १२५ के स्थानपर छन्द-सोरठा न देकर दोहा १२६ के स्थानपर छन्द और सोरठा दिया गया है। यह क्रम-भङ्ग भी जान-बूझकर ही साभिप्राय किया गया है। दोहा १२५ और छन्द जिसमें कविने नाम नहीं दिया है वह यह है—*'तात बचन पुनि मातु हित भाइ भरत अस राउ। मो कहुँ दरस तुम्हार प्रभु सब मम पुन्य प्रभाउ॥'* और *'श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी।'* (दो० १२६ छन्द) इसमें अपना नाम न देकर अपना स्वरूप लक्षित किया है। यह छन्द वाल्मीकिजीका वचन है। इसमें अपना नाम न देकर अपनेको उनका अवतार

सूचित किया है। दोहेमें श्रीरामजीके वचन मुनिप्रति हैं। दोनों सम्मुख हैं, तब नाम देनेकी आवश्यकता अब कहाँ रही?

प्रायः सब चौपाइयाँ एक जातिकी अर्थात् सोलह मात्राओंकी, दोहे सब १३-११ मात्राके, सब जगह एक-ही-एक छन्द है; दो कहीं नहीं हैं, इसी तरह छन्दके नीचे एक-ही-एक सोरठा है दो कहीं नहीं। इस काण्डमें 'इति' नहीं है और न किसीका संवाद है।

इस काण्डमें आद्योपान्त बहुत-से रूपक आये हैं। काण्डका प्रारम्भ रूपकालङ्कारसे किया गया है और समाप्ति भी रूपकहीपर। गोस्वामीजी रूपकालङ्कारमें बड़े ही निपुण दीखते हैं। आपके-से बड़े-बड़े रूपक शायद ही कहीं और किसी कविकी रचनाओंमें देखनेमें आते हैं। आपने इनके द्वारा विविध वस्तुओंके सुन्दर-सुन्दर चित्र हमारे सामने खींचकर रख दिये हैं, सब काण्डोंसे इसमें अधिक रूपक हैं।

नोट ३-श्रीरामचरितमानसकी अनेक चौपाइयाँ, दोहे इत्यादि मूल-मन्त्र ही माने गये हैं और ग्रन्थकी प्रायः प्रत्येक चौपाईमें रकार-मकार किसी-न-किसी रूपमें अवश्य आये हैं। मानस-अभिराममें इस ग्रन्थकी चौपाइयोंका प्रयोग अनेक मनोरथोंकी सिद्धिके लिये बताया गया है। इस चौपाईका जप आनन्द-मङ्गलका देनेवाला है।

नोट—४ *'जब तें'* इति। यहाँ लोग शंका करते हैं कि क्या विवाह करके घर आनेके पहले यहाँ मोद-मङ्गल न थे? इसका उत्तर (३६१। ५) में लिखा जा चुका है। (ख) ***'राम ब्याहि घर आये'*** इति। यहाँ श्रीरामचन्द्रजीके पुरुषार्थसे विवाह हुआ। शुल्कस्वयंवरमें उन्होंने धनुषको तोड़कर अपने पराक्रमसे ब्याह किया। अतः ***'राम ब्याहि घर आये'*** कहा। राजपुत्रोंका ब्याह करके घर आये ऐसा नहीं कहा। पुनः ***'ब्याहि'*** का भाव कि अपना ब्याह किया और भाइयोंका भी विवाह कराके घर आये। क्योंकि तीनों भाइयोंका विवाह शुल्क-स्वयंवरमें श्रीरामजीके धनुष तोड़नेके कारण ही जनकपुरमें हुआ। यथा—*'बिस्व बिजय जसु जानकि पाई। आए भवन ब्याहि सब भाई॥'* (१। ३५७) (ग) *'नित नव'* का भाव यह कि आज कहीं, कल कहीं, प्रतिदिन बढ़-चढ़कर *'जहँ तहँ राम ब्याहु सब गावा।'* (१। ३६१। ४) *'मंगल मोद उछाह नित जाहिं दिवस एहि भाँति। उमगी अवध अनंद भरि अधिक अधिक अधिकाति।'* (१। ३५९) में जो भी भाव है उसका भी इसमें समावेश हो गया। लाला भगवानदीनजीका इस शंकासमाधानपर एक दोहा है *'पहिले केवल फल रहे अवधपुरी के माँहि। अब भे चारिउ क्रियनयुत जब तें आये ब्याहि॥'* (घ)—ब्याहका सुख अयोध्याहीमें नहीं हुआ; किन्तु चौदहों भुवनोंमें हुआ, यथा—*'भुवन चारि दस भएउ उछाहू। जनकसुता रघुबीर बिबाहू॥'* यही बात आगे कहते हैं। (पं० रा० कु०)

नोट—५ श्रीपार्वतीजीने जो प्रश्न बालकाण्ड दोहा ११० में किये हैं उनमेंसे ***'राज तजा सो दूषन काही'*** इस प्रश्नके उत्तरमें सम्पूर्ण अयोध्याकाण्डका चरित कहा गया और सूक्ष्मरीतिसे एक चौपाईमें सूत्ररूपसे भी इसका उत्तर दिया गया।

श्रीभुशुण्डिजीसे जो मूलरामायण ग्रन्थकारने उत्तरकाण्ड दोहा (६४—६८) में कहलायी है उसमें इस काण्डके प्रकरण ये हैं—

'बहुरि राम अभिषेक प्रसंगा। पुनि नृप बचन राजरस भंगा॥ पुरबासिन्ह कर बिरह बिषादा। कहेसि राम लछिमन संबादा॥ बिपिन गवन केवट अनुरागा। सुरसरि उतरि निवास प्रयागा॥ बालमीक प्रभु मिलन बखाना। चित्रकूट जिमि बस भगवाना॥ सचिवागवन नगर नृप मरना। भरतागवन प्रेम बहु बरना॥ करि नृप क्रिया संग पुरबासी। भरत गये जहँ प्रभु सुखरासी॥ पुनि रघुपति बहु बिधि समुझाये। लेइ पादुका अवधपुर आये॥' कौन प्रसंग कहाँ-से-कहाँतक है यह उचित स्थानपर दिया जावेगा।

भुवन चारि दस भूधर भारी। सुकृत मेघ बरषहिं सुख-बारी॥ २॥
रिधि सिधि संपति नदी सुहाई। उमगि अवध-अंबुधि कहुँ आई॥ ३॥
मनिगन पुर नर नारि सुजाती। सुचि अमोल सुंदर सब भाँती॥ ४॥

शब्दार्थ—**भुवन**=लोक। **चारि दस**=चौदह। पुराणानुसार लोक १४ हैं—भू, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्य—ये सात 'सर्ग' लोक हैं और अतल, वितल, रसातल, सुतल, गभस्तिमत् (तलातल), महीतल और पाताल—ये सात पाताल हैं। **सुकृत**=पुण्य। **रिधि**=ऋद्धि=समृद्धि, बढ़ती। पुनः, **ऋद्धिः कुबेरपत्नी स्यात्** अर्थात् कुबेरकी पत्नी, सकुटुम्ब कुबेर ही—(सू० मिश्र) 'सिद्धि'—योग या तपके द्वारा प्राप्त अलौकिक शक्ति या सम्पन्नताको 'सिद्धि' कहते हैं। भगवत्-सम्बन्धी ८ सिद्धियाँ प्रसिद्ध हैं—अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व, सुख-समृद्धि। विशेष बा० मं० सो० १ और (१।२२।४) में देखिये। '**ऋद्धि सिद्धि**'=समृद्धि और सफलता—यह मुहावरा है। '**संपति**'=विभूति, ऐश्वर्य, निधि। **उमगि**=उमड़कर। बढ़कर ऊपर उठती हुई चलना 'उमगना' है। **अंबुधि**=(अम्बु=जल+धि=धारण करना) जलका अधिष्ठान समुद्र। '**सुजाति**'=अच्छी जातिके, उत्तम आचरणवाले, पुण्यात्मा। '**सुचि**' (शुचि)=पवित्र। '**अमोल**'=अमूल्य, जिसका मोल न हो सके।

अर्थ—चौदहों लोक भारी पर्वत हैं। (जिनपर) पुण्यरूपी मेघ सुखरूपी जल बरसाते हैं॥ २॥ ऋद्धि-सिद्धि और सम्पत्तिरूपी सुन्दर नदियाँ उमड़कर अवधरूपी समुद्रको आयीं (अर्थात् इसमें आ मिलीं)॥ ३॥ नगरके पुण्यात्मा स्त्री-पुरुष (इस समुद्रके) अच्छी जातिके मणिसमूह हैं जो सब प्रकारसे पवित्र, अमूल्य और सुन्दर हैं॥ ४॥

नोट—१ इन चौपाइयोंका भाव यह है कि श्रीदशरथजी महाराज तथा रानियों आदिके सुकृतोंके फलसे चौदहों लोक इस समय सुख पा रहे हैं—सभी ऋद्धि, सिद्धि और समस्त सम्पदाओंसे भरे-पूरे हैं और अवध तो मानो इनका अधिष्ठान ही है, इसके सुख-सम्पत्ति, ऋद्धि-सिद्धिकी तो थाह ही नहीं। यहाँके पुरवासी उत्तमाचरण, पवित्र और सुन्दर हैं। इसीका चित्र साङ्गरूपकद्वारा खींचकर दिखाया है, जो टिप्पणीसे भलीभाँति समझमें आ जावेगा।

टिप्पणी—१ '*भुवन चारि दस*' इति। (क) जल मेघसे उत्पन्न होता है। पहाड़ोंपरकी वर्षासे नदियोंकी उत्पत्ति है। पहाड़ोंसे नदियाँ निकलती हैं। यथा—'*बूँद अघात सहहिं गिरि कैसे।*' '*स्त्रवहिं सयल जनु निर्झर भारी। सोनित सरि कादर भयकारी॥*' (६। ८६। १०) '*पाप पहार प्रगट भै सोई।*' तथा यहाँ '*भुवन चारि*……'। पहाड़ोंपर वर्षा होनेसे वह जल नदियोंद्वारा समुद्रमें जा प्राप्त होता है। समुद्रसे अनेक रत्न पैदा होते हैं। उसीका यहाँ साङ्गरूपक बाँधा गया है। (ख) '*भूधर भारी*'—भुवन भारी हैं, इसीसे उन्हें 'भारी' भूधरोंसे उपमा दी। भारी पर्वतोंसे भारी नदियाँ निकलती हैं (जो समुद्रतक पहुँच जाती हैं)। (ग) '*सुकृत मेघ बरषहिं*'—राजा, रानी, परिजन और प्रजा सभी सुकृती हैं। यथा—'*नृप रानी परिजन सुकृत मधुकर बारि बिहंग।*' (१। ४०) '*सुकृती तुम्ह समान जग माहीं। भयेउ न है कोउ होनेउ नाहीं॥*' (१। २९४) '*तुम्ह गुरु बिप्र धेनु सुर सेवी। तसि पुनीत कौसल्या देवी॥*' (१। २९४) इत्यादि। पर्वतपर मेघोंकी भारी वर्षा होती है। यहाँ राजा-रानी आदिके सुकृतरूपी मेघ चौदहों लोकोंमें सुखरूपी जलकी भारी वर्षा करते हैं। ऐसा कहकर उनके सुकृतोंको भी भारी सूचित किया। (घ) '*बरषहिं सुख-बारी*'—सुकृतसे सुख होता है, यथा—'*सब दुख बरजित प्रजा सुखारी। धरमसील सुन्दर नर नारी॥*', '*तिमि सुख संपति बिनहिं बोलाए। धरमसील पहिं जाहिं सुभाए।*' (१।२९४), '*बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेदपथ लोग। चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय सोक न रोग॥*' (७। २०) '*सुख चाहहिं मूढ़ न धर्म रता।*' (७। १०२) मेघसे जल मिलता है वैसे ही सुकृतसे सुख। सुख सुकृतोंद्वारा हुआ, इसीसे वह सुहावनी ऋद्धि-सिद्धि-सम्पत्तिरूपी नदियोंद्वारा श्रीअवधरूपी समुद्रमें आ प्राप्त हुआ। (ङ) प्रारम्भमें '*जब तें राम ब्याहि घर आए। तब तें*……' कहकर जनाया कि ब्याहमें तो पुण्य हुआ ही था, घर आनेपर भी भारी पुण्य हुए, उसी सुकृतसे सब भुवन सुखसे भर गये। (च) नदीकी उत्पत्ति पर्वतसे है। पर उमग मेघोंकी वर्षासे ही होती है, इसीसे पर्वत और मेघ दोनों कहे। (बाबा हरिदासजी)

टिप्पणी—२ '*रिधि*……*आई*' इति। (क) जैसे समुद्रके ही जलसे मेघ बनते हैं और वर्षा होनेपर वही

जल नदियोंके द्वारा फिर समुद्रमें आ प्राप्त होता है, वैसे ही यहाँ समझिये। श्रीअयोध्याजीके सुकृतोंसे चौदहों भुवनोंमें सुखकी वृष्टि हुई। फिर वही सुख ऋद्धि-सिद्धि-सम्पत्तिके द्वारा अवधमें आकर प्राप्त हुआ है। क्योंकि जहाँ सुकृत होता है वहीं-सुख दौड़कर आ जाता है। ऋद्धि-सिद्धि और निधियाँ चौदहों भुवनोंका सुख लेकर अवधमें साक्षात् आयीं। यथा—*'सिधि सब सिय आयसु अकनि गईं जहाँ जनवास। लिये संपदा सकल सुख सुरपुर भोग बिलास॥'*(१। ३०६) (तबसे वे साथ हैं और अब तो उनकी स्वामिनी भी यहीं हैं) *'रमानाथ जहँ राजा ... अनिमादिक सुख संपदा रहीं अवध सब छाइ॥'* (७। २९) (ख) ऋद्धि-सिद्धि आदिके आनेका हेतु यह है कि सबको विवाहोत्सव देखनेकी लालसा है, यहाँ—*'मंगल सगुन मनोहरताई। रिधि सिधि सुख संपदा सुहाई॥ जनु उछाह सब सहज सुहाए। तनु धरि धरि दसरथ गृह आए॥ देखन हेतु राम बैदेही। कहहु लालसा होहि न केही॥'* (१। ३४५) (ग) *'नदी सुहाई'*—ऋद्धि-सिद्धि और सम्पत्ति चल हैं, चलायमान हैं स्थिर रहनेवाली नहीं हैं। आज कहीं हैं तो कल कहीं। इसीसे इनसे नदीका रूपक बाँधा गया। यथा—*'राम बिमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई॥ सजल मूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं। बरषि गए पुनि तबहिं सुखाहीं॥'*(५। २३) अयोध्याजीकी सम्पत्ति अचल है अतः उसे समुद्रसे रूपक दिया। नदियाँ समुद्रमें मिलनेसे अचल हो जाती हैं, अन्यत्र वे चल (अस्थिर) हैं। अवधरूपी समुद्रमें संगम होनेसे सब ऋद्धि-सिद्धि-सम्पत्ति यहीं छा गयीं अर्थात् अचल होकर रह गयीं। यथा—*'अनिमादिक सुख संपदा रही अवध सब छाइ।'* समुद्रके भीतर मणिगण अचल हैं वैसे ही अवधवासी अयोध्यापुरीको छोड़नेकी इच्छा नहीं करते, अवध त्याग करनेके विषयमें जड़ हैं। (घ) *'सुहाई'* का भाव कि अवध-वासियोंकी सम्पत्ति सुकृतसे प्राप्त हुई है। अधर्ममय सम्पत्ति सुहाई नहीं होती। रावणकी सम्पत्ति लूटमारकी थी। लूटमारकर, सताकर, जीवोंको दुखाकर उसने सम्पत्ति बटोरी थी, इसीसे उसके सम्बन्धमें कहा है कि *'रावन सो राजा रजतेजको निधान भो। तुलसी तिलोक की समृधि सौज संपदा सकेलि चाकि राखो रासि, जाँगर जहान भो।'* (क० सुं०३२) *'जागर'* पीटनेसे होता है। रावणने; पीटकर (सताकर) सम्पत्ति प्राप्त की थी। अयोध्यावासियोंके यहाँ संपत्ति अपनेसे आयी। अथवा, नदीकी बाढ़ भयानक होती है, यथा—*'पाप पहार प्रगट भइ सोई। भरी क्रोध जल जाइ न जोई॥'* (४३। १) *'स्रवहिं सैल जनु निर्झर भारी। सोनित सरि कादर भयकारी॥'* पर यह नदी भयानक नहीं है, *'सुहाई'* है, क्योंकि ऋद्धि-सिद्धि-सम्पत्ति सबको सुन्दर लगती है। [जो दुखाकर बटोरी हुई सम्पत्ति *'असुहावनी'* होती है। ऐसी सम्पत्ति-नदी भयावनी होती है। क्योंकि वह पापरूपी पर्वतसे निकलती है, यथा—*'पाप पहार प्रगट भइ सोई।'* सम्पत्तिसे नवनिधि समझिये। यह सबको सुहाती ही है। अतः सुहाई कहा। (प्र० सं०)]

नोट—२ मुं० रोशनलालजी लिखते हैं कि *'जब तें राम ब्याहि घर आए। नित नव मंगल ...'* से बालकाण्ड-का सम्बन्ध मिलाकर आगे *'भुवन चारि दस ...'* में *'नित नव मंगल'* का रूपक बाँधते हैं। जैसे इन नदियोंका जल नित्य नया समुद्रमें प्रवेश करता है वैसे ही नित्य नये मङ्गल-मोद-बधावे अवधमें होते हैं। २—*'संपत्ति'* और *'नदी सुहाई'* का साम्य इसलिये है कि नदी कुटिलगामिनी है, यथा—*'गति कूर कविता सरितकी'*, 'नद्यः कुटिलगामित्वात्'। (विश्वनाथ कवि) (सू० प्र० मिश्र)

टिप्पणी—३ *'उमगि अवध अंबुधि ...'* इति। (क) अवधको अम्बुधि कहनेका भाव कि (१) समुद्र स्वयं पूर्ण है, वह नदियोंके जलकी अपेक्षा नहीं करता। वैसे ही अयोध्या सब सम्पत्तिसे भरी है, उसे ऋद्धि-सिद्धि-सम्पत्तिकी किंचित् भी अपेक्षा नहीं, यथा—*'जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं। जद्यपि ताहि कामना नाहीं॥ तिमि सुख संपति बिनहिं बोलाये। धरमसील पहिं जाहिं सुभाये॥'* (१। २९४) समुद्र जलकी अवधि (सीमा एवं अधिष्ठान) है, वैसे ही अवध सुखकी सीमा है, अधिष्ठान है। चौदहों भुवनोंका सुख सिमिटकर अवधमें भर गया। (२) चौदहों भुवनोंमें मेघोंकी वर्षाकी-सी सम्पदा है और अवधमें समुद्रकी-सी सम्पदा है। सब भुवनोंमें बूँद-बूँद मात्रकी आमदनी (आय) है और अयोध्यामें सहस्रों नदियोंके संगमकी-सी आमदनी है। [सुखरूपी जलकी वृष्टि तो सब लोकोंमें हुई, पर सब लोकोंका सुख बूँदमात्र ही हुआ, क्योंकि वहाँ

केवल बूँद बरसे और जल तो सब अवधरूपी समुद्रमें ही उमड़कर आ गिरा है। (प्र०सं०)] (३) अयोध्याके समान अयोध्या ही है जैसे समुद्रके समान समुद्र ही है। (४) जैसे समुद्र एकरस अचल है, कभी घटता नहीं; वैसे ही अयोध्याकी सम्पत्ति अचल है। (ख) *'आई'* का भाव कि अपनेसे आ गयी। अवधवासियोंको उसकी चाह नहीं है। यहाँतक समुद्रके बाहरकी सम्पदा (जो उसमें बाहरसे आयी) कही, आगे उसके भीतरकी सम्पत्ति कहते हैं।

टिप्पणी—४ *'मनिगन पुर नर"'* इति। (क) पुर-नरनारिको मणिगण कहनेसे पाया गया कि अयोध्याका रूपक रत्नाकर समुद्रसे बाँधा है। जैसे समुद्रके समान समुद्र, वैसे ही अयोध्याके समान अयोध्या और यहाँके पुरवासियोंके समान यहीं हैं, अन्यत्र चौदहों भुवनोंमें न तो ऐसे सुन्दर पुरवासी हैं और न किसीके ऐसे सुकृत हैं जो मेघोंके समान समस्त भुवनोंमें सुख बरसावें। (ख) जैसे समुद्रके बाहरकी सम्पदा ऋद्धि-सिद्धि कही और *'सुहाई'* शब्दसे उसकी शोभा कही, वैसे ही बाहरकी सम्पदा मणिगण-पुरनरनारि कहकर *'सुचि अमोल सुंदर सब भाँती'* से उसकी शोभा कही। (ग) ऋद्धि-सिद्धि-सम्पत्तिसे अवधवासी श्रेष्ठ हैं क्योंकि वह नदी है और ये मणिगण हैं। नदीसे मणिगण विशेष (श्रेष्ठ) हैं। मणिकी जाति, पवित्रता, मूल्य और सुन्दरता देखी जाती है। इसीसे यहाँ भी चारोंको कहा। कोई मणि स्त्रीवाचक है, कोई पुरुषवाचक, इसीसे *'नरनारि'* कहा। शुचि, सुजाति, अमूल्य और सुन्दर ये सब मणिगणके विशेषण हैं, क्योंकि सब पुरवासी सब प्रकार सुन्दर, शुचि आदि हैं। (घ) इस सुखके भोक्ता श्रीदशरथजी हैं। पुरवासी रत्न हैं। रत्नोंका लाभ राजाको होता है।

टिप्पणी—५ जलका वर्णन करके अवधवासियोंको जलचर कहना चाहिये था अर्थात् कहना था कि उस सुखरूपी जलमें विहार करनेवाले जलचर हैं, पर ऐसा न कहा, क्योंकि यहाँ अयोध्याकी विभूति कहते हैं, यथा—*'कहि न जाइ कछु नगर बिभूती।'* जलचरकी गणना विभूतिमें नहीं है, इसीसे मणिगणकी उपमा दी। अथवा, अवधवासी सुखके विहारी हैं, वे तो श्रीरामस्वरूप सुखके विहारी हैं, इससे जलचरकी उपमा न दी।

टिप्पणी—६-*'मनिगन पुर नर नारि"'* इति। (क) वर्षाका जल नदियोंद्वारा उमड़कर समुद्रमें जाता है, उससे वहाँ सुजाति, अमूल्य और सुन्दर मणिगण होते हैं, यह अवर्ण्य (उपमान) है। वैसे ही चौदहों भुवनोंमें सुकृतजनित सुखकी वृद्धि हुई, जो ऋद्धि-सिद्धि-सम्पत्तिद्वारा उमगकर अवधमें आ प्राप्त हो गया जिससे यहाँके स्त्री-पुरुष सुजाति और शुचि गुणयुक्त भी हुए एवं अन्य सब प्रकारसे सुन्दर हुए, यह अभिधेय (प्रतिपाद्य विषय) है। अतएव उससे यावत् सुकृतोंके फलकी परिसमाप्ति और उसके फलभूत गुणगणयुक्त नर-नारि हुए, यह व्यंग है। (पं० रा० कु०) पुनः, (ख) भाव कि समुद्रमें रत्न होते हैं; पर ये रत्न सभी तरहके होते हैं, इनमें भी वर्णभेद होता है, इनमें बहुत-से कुजाति अर्थात् दूषित भी होते हैं, बहुतोंका कुछ-न-कुछ मूल्य भी होता है और कितने ही देखनेमें सुन्दर भी नहीं होते। और अवधवासी सभी स्त्री-पुरुष सुजाति मणिगण हैं। अर्थात् सुकृत-परायण, उत्तमाचरणवाले, पवित्र, अमूल्य (प्रतिष्ठित) और सभी प्रकारसे सुन्दर हैं [वाल्मी० १। ६ में लिखा है कि अयोध्याजीके सभी स्त्री-पुरुष धर्मात्मा, संयमी, शीलवान्, चरित्रवान्, महर्षियोंके समान शुद्ध, आत्मवान्, अग्निहोत्री, यज्ञ करनेवाले, बहुश्रुत, वेदाङ्गोंके ज्ञाता, रूपवान्, राजभक्त, दानी, कृतज्ञ, सत्यके अनुयायी, पराक्रमी, धनधान्यसे पूर्ण और दीर्घजीवी थे। यथा—**'सर्वे नराश्च नार्यश्च धर्मशीलाः सुसंयुताः। मुदिताः शीलवृत्ताभ्यां महर्षय इवामलाः'** (९) **'"कृतज्ञाश्च वदान्याश्च शूरा विक्रमसंयुताः'** (१७) **'दीर्घायुषो नराः सर्वे धर्मं सत्यं च संश्रिताः'** (१८) ये सब भाव 'सुजाति, शुचि, अमोलसे सूचित कर दिये हैं। सू० प्र० मिश्रजी कहते हैं कि और लोकोंमें पाप-पुण्य दोनोंकी व्यवस्था रहती है, परंतु श्रीअवधमें इन बातोंका नाम निशान भी नहीं, विषमताका नाम ही वहाँसे निकाल दिया गया है, समता-ही-समता रह गयी है। इसीलिये 'सुजाति' विशेषण ठीक घटता है।] (ग)—'सब भाँति' अर्थात् और भी जिस प्रकारकी सुन्दरता कोई होती हो वह सब भी इनमें है।

नोट—३ पुरनरनारियोंके विषयमें जो यहाँ कहा है उसका मिलान उत्तरकाण्ड दोहा २१ से कीजिये। यथा—*'राम भगतिरत नर अरु नारी। सकल परमगति के अधिकारी॥ अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब*

सुंदर सब बिरुज सरीरा॥ नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना॥ सब निर्दंभ धरमरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी॥'

कहि न जाइ कछु नगर बिभूती। जनु एतनिअ बिरंचि करतूती॥५॥

शब्दार्थ—**बिभूती** (विभूति)=ऐश्वर्य, सुख-समृद्धि, ऋद्धि-सिद्धि-सम्पत्ति। **एतनिअ**=बस इतनी ही। **बिरंचि**=रचना करनेमें विशेष निपुण, ब्रह्माजी। **करतूती** (कर्तृत्व)=कारीगरी, कौशल, करामात।

अर्थ—नगरका ऐश्वर्य कुछ कहा नहीं जाता। ऐसा जान पड़ता है, मानो ब्रह्माकी करतूत बस इतनी ही है॥५॥

टिप्पणी—१ (क) नगरकी विभूतिका वर्णन करनेके लिये समुद्रका रूपक बाँधा। भाव कि नगर समुद्रके समान सुखसे भरा है। (ख) *'कहि न जाइ'* यथा—*'अवधपुरी बासिन्ह कर सुख संपदा समाज। सहस सेष नहिं कहि सकहिं"" ॥'*(७। २६) इससे जनाया कि उस विभूतिको ऐसा ही जानिये जैसा रूपकमें *'जब तें राम ब्याहि घर आये'* से *'रामचंद मुखचंदु निहारी'* तक कहा गया। (क) *'जनु एतनिअ बिरंचि करतूती'* इति। ऋद्धि-सिद्धि-सम्पत्ति विधिकी रची हुई है। नगर साक्षात् साकेत है। विधिनिर्मित नहीं है। इसीसे विधिकी करनी नगरमें नहीं कही गयी। 'बिरंचि की करतूती' को विभूतिके साथ लगाना चाहिये। अयोध्या विभूतिकी अवधि (सीमा) है, सुखकी अवधि है और उसका ऐश्वर्य ब्रह्माकी करतूतिकी अवधि है। (घ) उपर्युक्त नगरकी ऋद्धि-सिद्धि-सम्पत्ति, स्त्री-पुरुष, सभी 'विभूति' पदसे जना रहे हैं। यह सब विभूति उत्प्रेक्षाका विषय है। कविने यहाँ ब्रह्माजीके सृष्टि-रचना-कौशलपर इतिश्री लगाकर (कि मानो ब्रह्माकी इतनी ही करामात है। इससे अधिक नहीं, इससे बढ़िया रचना अब वे नहीं कर सकते, उनकी कारीगरीकी इतिश्री हो गयी, सब यहीं खर्च हो गयी) नगरके ऐश्वर्यको अकथनीय सूचित किया। नगरकी विभूतिमें इतिश्री नहीं लगायी।—(पं० रामकुमार) यहाँ 'अनुक्तविषयावस्तूत्प्रेक्षा अलङ्कार' है। [सू० प्र० मिश्र—*'जनु एतनिअ""'* का भाव यह है कि ब्रह्माकी करतूति लोकोंके भीतर ही रह गयी, कहीं बाहर नहीं छिटकी। जब यहाँ उनकी मति ही न पहुँची तब ब्रह्माकी सृष्टिसे उत्पन्न सांसारिक या पारलौकिक लोगोंकी गति क्या चलेगी?]

पं० रामकुमारजी—हिंदूशास्त्रोंके अनुसार अयोध्याजी यद्यपि सृष्टिमें हैं तथापि अलग भी हैं। गीतावली उत्तरकाण्डसे मिलान कीजिये—*'देखत अवधको आनंद। हरषि बरसत सुमन निसिदिन देवतनि को बृंद॥ नगर रचना सिखन को विधि तकत बहु बिधि बंद। निपट लागत अगम ज्यों जलचरहि गमन सुछंद॥ मुदित पुरलोगनि सराहत निरखि सुखमाकन्द। जिन्हके सुअलि-चष पियत राममुखारविंद मकरंद॥ मध्य ब्योम बिलंबि चलत दिनेस उड़ुगनचंद। रामपुरी बिलोकि तुलसी मिटत सब दुख द्वंद्व॥'*(पद २३। १—४) (विशेष १। १६। १ *'बंदौं अवधपुरी अति पावनि'* में देखिये।) यहाँतक नगरकी विभूति कही, आगे पुरवासियोंका हाल कहते हैं।

सब बिधि सब पुरलोग सुखारी। रामचंद मुखचंदु निहारी॥६॥
मुदित मातु सब सखी सहेली। फलित* बिलोकि मनोरथ बेली॥७॥
रामरूप गुन सील सुभाऊ। प्रमुदित होइ देखि सुनि राऊ॥८॥

---

* 'फुलित' पाठ पं० शिवलालपाठककी प्रतिमें है और दीनजी उसको शुद्ध मानते हैं। वे कहते हैं कि बेलोंकी शोभा साहित्यमें फूलनेहीमें मानी गयी है। दूसरे फलित तब कह सकते जब उनके संतान पैदा होती, सो उसका जिक्र इस काण्डमें है नहीं। वृक्ष या विटपके वास्ते 'फलित' लिखना और लताओंके लिये 'फुलित' लिखना ही उचित है।

अन्य सब प्रतियोंमें 'फलित' पाठ है, भागवतदासजी और राजापुरका यही पाठ है। इस पाठके पक्षमें गौड़जी कहते हैं कि—मानसकारने यहाँ पाठ 'फलित' रखा है, फुलित नहीं। उसके कई हेतु हैं—(१) फुलित शब्द रामचरितमानसभरमें और कहीं नहीं आया। फलित शब्द अर्द्ध तत्सम है, फुलित खींचातानीसे तद्भव हो सकता है। तुलसीदासजीने प्राकृतके व्याकरणका पूरा ध्यान रखा है। इससे अनुमान होता है कि यहाँ 'फुलित' नहीं 'फलित'

शब्दार्थ—**सुखारी**=सुखी। **चंद, चंदु** (चन्द्र)=चन्द्रमा। **निहारी**=देखकर। **मुदित**=आनन्दित, आनन्दमें भरा। **सखी-सहेली**—ये दोनों पर्यायवाची शब्द हैं। दोनों एक ही अर्थमें एक साथ बोलनेका मुहावरा है। तो भी इनके यहाँ साथ प्रयुक्त किये जानेसे लोग इनके भिन्न-भिन्न अर्थ भी लगाते हैं। शब्दसागरमें लिखते हैं कि—'**सखी**'=सहचरी, संगिनी। साहित्य-ग्रन्थोंके अनुसार वह स्त्री जो नायिकाके साथ रहती हो और जिससे वह अपनी कोई बात न छिपावे। सखीका चार प्रकारका कार्य होता है—मंडन, शिक्षा, उपालम्भ और परिहास। विनायकी टीकाकार लिखते हैं कि 'सखी' (स=बराबर+ख्या=कहलाना)=बराबरीवाली संगिनी। रघुवंशमें कहा है—'**समानशीलव्यसनेषु सख्यम्**' अर्थात् एक-से स्वभाव झुकाववाली आपसमें सखी कहलाती हैं। सहेली [सह + एली (प्रत्यय)]=साथमें रहनेवाली, संगिनी, अनुचरी, परिचारिका।—(श० सा०) बैजनाथजी और वीरकविजी कहते हैं कि 'सखी' पूज्य मित्राणी है और 'सहेली' उससे न्यून है, इसमें सेवकिनीका भाव होता है। **फलित**=फली हुई, फलती हुई, सम्पन्न, पूर्ण। **बेली**=बेल, लता। वनस्पति-शास्त्रके अनुसार वे छोटे कोमल पौधे जिनमें काण्ड या मोटे तने नहीं होते और जो अपने बलपर ऊपरकी ओर उठकर नहीं बढ़ सकते। **मनोरथ**=अभिलाषा, इच्छा। **सील** (शील)=हृदयकी वह स्थायी स्थिति है जो सदाचारकी प्रेरणा आप-से-आप करती है। इसका आचरण आनन्द और हर्षपूर्वक होता है। मुरव्वत, सद्वृत्ति, उत्तम आचरण, चाल-व्यवहार, संकोची स्वभाव, दूसरेका जी न दुःखे यह भाव, शिष्टाचार। शील कहीं दस, कहीं पाँच कहे गये हैं। **प्रमुदित**=बहुत ही आनन्दित।

अर्थ—सब पुरवासी श्रीरामचन्द्रजीका चन्द्ररूपी मुख देखकर सब प्रकारसे सुखी हैं॥ ६॥ सब माताएँ और उनकी सखी-सहेलियाँ मनोरथरूपी बेलिको फली हुई देखकर आनन्दित हैं॥ ७॥ श्रीरामचन्द्रके रूप, गुण, शील और स्वभावको देख-सुनकर राजा अत्यन्त आनन्दित होते हैं॥ ८॥

टिप्पणी—१ '*सब बिधि सब पुरलोग*…' इति। (क) यहाँ पुरके लोगोंका सुखी होना कहा। 'लोगाइयों' (स्त्रियों) को नहीं कहा। कारण कि स्त्रियाँ बिना अवसरके अपने-अपने घरोंसे निकलकर श्रीरामजीका मुख नहीं देख सकतीं और यहाँ मुखचन्द्र देखकर सुखी होनेका प्रसंग कह रहे हैं, इसीसे स्त्रियोंको न कहा। अथवा, 'लोग' में स्त्री-पुरुष दोनों आ गये।

टिप्पणी—२ '*रामचन्द मुखचंदु निहारी*' इति। (क) मुखचन्द्रको देखकर सुखी होना कहकर जनाया कि पुरवासी नगरकी विभूति-(ऋद्धि-सिद्धि-सम्पत्ति आदि-) से सुखी नहीं हैं, वे तो श्रीरामचन्द्रजीके मुखचन्द्रको ही देखकर सुखी होते हैं। (इनके दर्शनके आगे वे ऋद्धि-सिद्धि एवं नवनिधियोंको तुच्छ मानते हैं, वे सब तो दर्शनपर निछावर कर डालनेकी वस्तुएँ हैं।) (ख) इससे यह भी जनाया कि श्रीरामजीका नित्यप्रति दर्शन करना यह पुरवासियोंका नित्यका नियम है और मुखचन्द्रदर्शनका सुख समस्त सुखोंसे बढ़कर है, यथा—'***मुख छबि कहि न जाइ मोहिं पाहीं। जो बिलोकि बहु काम लजाहीं॥***' (ग) उपर्युक्त भाव (कि

है। (२)—फुलित माननेवाले यह समझते हैं कि माताओं और उनकी सखियों-सहेलियोंका मनोरथ संतानके हो जानेमें फलित होगा परंतु वह इस बातको भूल जाते हैं कि त्रेतायुगमें कलियुगकी तरह ब्याह होते ही सन्तान नहीं हो जाती थी। साठ हजार वर्षपर राजा दशरथके और दस हजार वर्षपर स्वयं चारों भाइयोंके सन्तति हुई। यह साधारण नियम था। सन्तानका शीघ्र होना अपवाद है। ऐसे दीर्घकालके बाद होनेवाली घटनाके लिये मनोरथकी कथा अस्वाभाविक दीखती है। यदि कहा जाय कि मनोरथका अन्तिम फल राज्य-प्राप्ति था तो राज्य-प्राप्ति विवाहसे वह सम्बन्ध नहीं रखता जो सम्बन्ध लता, फूल और फलमें है। (३)—विश्वामित्रने 'इन्ह कहँ अति कल्यान' यह कहकर जो आशा दिलायी थी उस आशा-लतामें फूल तब लगे जब धनुषभंगके समाचार राजा आदिको मिले। उन फूलोंमें फल तब प्राप्त हुए जब माताओं और सखियोंने बहुओंके मुख देखे। जैसे स्त्रियोंकी आशा-लता फली वैसे ही राजा दशरथके मनोरथका वृक्ष भी उस समय फला जब कि उन्होंने पहले-पहल जनकपुरमें बहुओंका मुख देखा। यहाँ मनोरथके साथ बेलिका प्रयोग करके संगतिकी रीतिको भंग करते हुए भी सुकविने राजाके मनोरथ और रानियोंकी आशाके फलित होनेकी सुसंगति दिखायी है।

श्रीरामदर्शनसे ही सुख मानते हैं नगरविभूतिसे नहीं) पाठके व्यतिक्रमके कारण कहा गया है। *'कहि न जाइ कछु नगर बिभूती'* कहकर तुरंत यह कहनेसे कि *'सब बिधि सब पुरलोग सुखारी'* यह समझा जाना स्वाभाविक है कि सब पुरवासी इस विभूतिके कारण सुखी हैं, इसीसे उसका निराकरण करनेके लिये अगले चरणमें कहते हैं कि 'रामचन्द्रजीके मुखचन्द्रको देखकर वे सुखी हैं।' बीचमें *'सुखारी'* शब्द देनेसे यह भी भाव है कि 'ऋद्धि-सिद्धि-सम्पत्ति' का लौकिक सब सुख होनेपर भी वे श्रीरामदर्शनसे ही सुखी होते हैं।

टिप्पणी—३ (क) सब पुरवासियोंको नगरकी विभूतिमें गिना आये, यथा—*'मनिगन पुरनरनारि सुजाती।'* श्रीरामजीको 'नगरविभूति' नहीं कहा, क्योंकि ये उसकी विभूति नहीं हैं, किंतु उसके तथा उसकी विभूतिके पति (स्वामी) हैं। यहाँतक अवधवासियोंको स्वार्थ और परमार्थ दोनोंकी प्राप्ति दिखायी। विरंचिकी करतूतिकी सीमा ऐसी विभूति पुरवासियोंको प्राप्त है, यह स्वार्थकी प्राप्ति है और *'रामचंद मुखचंदु निहारी'* यह परमार्थकी प्राप्ति है, यथा—*'राम ब्रह्म परमारथ रूपा॥'* (९३। ७) प्रथम स्वार्थकी अवधि कही थी, अब परमार्थकी कही। अवधवासियोंके निकट (समक्ष) सामान्य है, परमार्थ विशेष है यह बात वनयात्राके समय स्पष्ट देख पड़ी है। (ग) विभूतिके भोगसे ताप होना चाहिये, यथा **'भोगे रोगभयं सुखे दुःखभयम्।'** अर्थमें चौदह अनर्थ कहे गये हैं। वे अवधवासियोंको नहीं होते। उनका भय इनको नहीं है, क्योंकि रामचन्द्रजीके दर्शनसे त्रिताप रह ही नहीं सकता, यथा—*'बदन मयंक ताप त्रय मोचन॥'* (१। २१९) (इनको तो ताप दर्शन न मिलनेसे ही होता है।)

नोट—१ यहाँ प्रसङ्गसे ध्वनित है कि श्रीरघुनाथजीके विश्वामित्रजीके संग चले जानेपर पुरवासियोंको सब तरहका दुःख था जो अब मिट गया है। आगे पुरवासियोंको वियोगकातर सरकारके रथके पीछे-पीछे नगर छोड़ एक मंजिलतक जाना, फिर भरतजीके साथ मनाने जाना और अन्तमें उस वियोग-दुःखसे उनके शुभागमनसे छुटकारा पाना सबकी संगति है। (गौड़जी)

टिप्पणी—४ *'पुरलोग सुखारी रामचंद मुखचंदु……'* इति। (क) चन्द्रमाको देखकर समुद्र अपने परिकर-(तरंगमाल-) द्वारा अपना हर्ष जनाता है; वैसे ही श्रीरामचन्द्रजीका मुखचन्द्र देखकर अवध (अयोध्यापुरी) पुरवासियोंद्वारा अपना हर्ष जना रहा है। यह उपर्युक्त (पूर्व चौपाईकी टिप्पणीमें कहा हुआ) रूपकाभिधान है; फल व्यंजित किया। [(ख)—मुखपर चन्द्रमाका आरोपण करके उसका आह्लादकारक होना सूचित किया। मुखचन्द्र देखकर सुखी रहते हैं—इस कथनसे यह संदेह होता है कि मुखमात्रमें आह्लाद है, शेष अङ्ग आह्लादकारक नहीं हैं। अतएव यहाँ 'राम' के साथ भी *'चंद'* पद देकर जनाया कि सभी अङ्ग आह्लादकारक हैं। श्रीरामचन्द्रजीका मुखचन्द्र देख सुखी होना कहकर इनको सर्व-दूषण-रहित जनाया। (ग) समुद्र पूर्णचन्द्रको देखकर विशेष तरंगित होता है। समस्त नदियोंका जल पाकर भी वह वैसा तरंगित नहीं होता। यहाँ नगरभरका आह्लादित होना कहा। इसकी व्याख्या उत्तरकाण्डके *'राकाससि रघुपति पुर सिंधु देखि हरषान। बढ़ेउ कोलाहल करत जनु नारि तरंग समान॥'* (दो० ३) में है (बाबा रामदासजी)। पुनः (घ) *'सब बिधि सब पुर लोग सुखारी।'* का भाव कि इनको सदा सुखोंकी उमंग रहती है, यह रामचन्द्रजीके मुखचन्द्रको देखकर सदा आह्लादित रहते हैं; समुद्रको सदा यह अवसर प्राप्त नहीं वह केवल पूर्णचन्द्रको देख आह्लादित होता है। (मुं० रोशनलाल)]

नोट—२ यहाँ यह शंका होती है कि *'पुर नरनारि'* की तो मणिगणसे उपमा दी थी न कि समुद्रसे। तब यहाँ मणियोंका सुखी होना चन्द्रको देखकर—यह कैसा? इसका समाधान यह है कि पहला साङ्गरूपक अर्धाली ४ पर पूरा हो गया। यहाँ उल्लास अलङ्कार है। रामचन्द्रजीके मुखपर पूर्णचन्द्रका आरोप किया गया। अतः उसके सम्बन्धसे *'पुरलोग'* समुद्र हुए; क्योंकि चन्द्रमा समुद्रके ही उल्लासका हेतु है।

टिप्पणी—५ *'मुदित मातु सब सखी सहेली।……'* इति। (क) बाहरका हाल कहकर अब अन्तःपुरका हाल कहते हैं। प्रथम पुरवासियोंका आनन्द कहकर अब माताओं-(रानियों-) का सुख कहते हैं, फिर पिता-(राजा-) का सुख कहेंगे। (ख) मातासे नीची उनकी सखी हैं और सखीसे नीचे सहेली हैं,

अत: उसी क्रमसे कहते हैं। (सखी-सहेलीके भेद शब्दार्थमें देखिये।) (ग) *'फलित बिलोकि मनोरथ बेली'* मनोरथ सफल हुए यह देखकर मुदित हैं। अर्थात् जितनी भी कामनाएँ थीं वे सब पूर्ण हुईं। मनोरथ ये थे कि पुत्रोंका विवाह हो जाय, उनके अनुरूप योग्य दुलहिनें मिलें, कुल अच्छा मिले। ये सब पूरी हुईं, अत: मुदित हैं। यथा—*'पूजी सकल कामना जीकी', 'उमगि उमगि आनंद बिलोकति बधुन्ह सहित सुत चारी।'* (गी० १। १०७) *'राम सीय छबि देखि जुवति जन करहिं परस्पर बाता। अब जान्यो साँचहूँ सुनहु सखि कोबिद बड़ो बिधाता॥'* (गी० १। १०८) *'एहि सुख ते सतकोटि गुन पावहिं मातु अनंदु। भाइन्ह सहित बिआहि घर आए रघुकुलचन्दु॥'*(१।३५०)—इन उद्धरणोंसे स्पष्ट है कि पुत्रवधुओंकी प्राप्ति ही मनोरथका फलयुक्त होना है। (*'फलित'* पाठका समर्थन पाठान्तरकी पाद-टिप्पणीमें किया गया है। विशेष भाव वहीं देखिये।) १। ३५१। १ देखिये।

नोट—३ पाँड़ेजी, बैजनाथजी और विनायकी टीकाकार 'पुत्र बधू' को मनोरथकी बेल और उनका अपने अनुकूल आचरण होना, उनकी सेवा सुलक्षणासे प्रसन्न होना 'फलित' होना कहते हैं। पर विवाह-प्रकरणसे भी बहुओंसहित पुत्रोंका देखना ही फल लगना सिद्ध होता है। वहाँ राजाके मुदित होनेका प्रसङ्ग है, वैसे ही यहाँ रानियोंके मुदित होनेका। वहाँ भी 'फल' पद प्रयुक्त हुआ और यहाँ भी। मिलान कीजिये, यथा—*'बैठे बरासन रामु जानकि मुदित मन दसरथु भए। तन पुलक पुनि पुनि देखि अपने सुकृत सुरतरु फल नए॥ मुदित अवधपति सकल सुत बधुन्ह समेत निहारि। जनु पाए महिपालमनि क्रियन्ह सहित फल चारि॥'* (१। ३२५) राजाको तो यह आनन्द जनकपुरमें ही प्राप्त हो चुका था, रानियोंको वह सुख अब मिला *'जब तें राम ब्याहि घर आये'* वहाँ राजाको 'मुदित' कहा और यहाँ रानियोंके प्रति वही 'मुदित' शब्द दिया गया।

टिप्पणी—६ (क) *'मनोरथ बेली'*—मनोरथको बेलि कहा, क्योंकि मनोरथ माताओं (स्त्रियों) आदिका है तथा स्त्रियों-(बहुओं-)की प्राप्तिका है। राजा पुरुष हैं और उनका मनोरथ पुरुषवाचक युवराज-पद देनेका है, इसीसे उनके मनोरथको पुरुषवाचक पुलिङ्ग शब्दसे रूपक देंगे; यथा—*'मोर मनोरथ सुरतरु फूला। फरत करिनि जिमि हतेउ समूला॥'* (२९। ७) (पु० रा० कु०) पुन: बेलि दूसरेके आश्रयसे बढ़ती, फूलती, फलती है। इसी तरह इनके मनोरथ देव-देवताओंकी मान-मान्यता मन्नतोंके आश्रित होकर फली। इन्होंने मनोरथकी पूर्तिके लिये बहुत-सी मन्नतें मानी थीं, यथा—*'देव पितर पूजे बिधि नीकी। पूजी सकल बासना जीकी॥'* (१। ३५१। १) अत: मनोरथको बेलि कहा। (श्रीरामदासजी प्र० सं०)

टिप्पणी ७—(क) *'रामरूप गुन सील सुभाऊ'* इति। ये सब बातें चारों भाइयोंमें हैं पर श्रीरामजीका रूप, गुण और शील सबसे अधिक है, यथा—*'चारिउ सील रूप गुन धामा। तदपि अधिक सुखसागर रामा॥'* (१। १९८। ६) इसीसे इनके रूप-गुणादिको देखकर विशेष प्रसन्नताका होना कहा। वाल्मीकीयमें जो रूप-गुणादिका विस्तृत वर्णन सर्ग १ व २ में है वह सब इतनेसे यहाँ जना दिया है। स्वभावके सम्बन्धमें भुशुण्डीजी कहते हैं कि *'सिव अज पूज्य चरन रघुराई। मो पर कृपा परम मृदुलाई॥ अस सुभाउ कहुँ सुनउँ न देखउँ। केहि खगेस रघुपति सम लेखउँ॥'* (७। १२४) (इनमेंसे कुछ गुणोंका उल्लेख आगे *'भए राम सब बिधि सब लायक॥'* (३। १) में किया गया है।) (ख) प्रथम रूप है, रूपमें गुण, शील-स्वभाव होते हैं। इसीसे 'रूप' को प्रथम कहा।

टिप्पणी ८— *'प्रमुदित होइ देखि सुनि राऊ'* इति। [(क) रूपादि देखकर सभी प्रसन्न होते हैं, यथा—*'भये सब सुखी देखि दोउ भ्राता।'* (१। २१५)—*'प्रभु सोभा सुख जानहिं नयना। कहि किमि सकहिं तिन्हहि नहिं बयना॥'*(७। ८८) *'सुमिरि रामके गुनगन नाना। पुनि पुनि हरष भुसुंडि सुजाना॥'* (७। १२४) *'सुनि सीतापति सील सुभाउ' 'मोद न मन तन पुलक नैन जल सो नर खेहर खाउ।'* (वि० १००) (इस पदमें शील स्वभावका सुन्दर वर्णन है और अयोध्याकाण्डमें इन सब गुणोंका ठौर-ठौरपर वर्णन मिलेगा।) फिर ये तो राजाके पुत्र ही हैं इनका विशेष प्रसन्न होना स्वाभाविक ही है।] (ख) प्रमुदितका भाव कि देखकर

मुदित हैं और (दूसरोंसे श्रीरामरूप-गुणादिकी प्रशंसा) सुननेपर प्रमुदित (विशेष आनन्दित) होते हैं। अथवा, माता आदिके सुखसे इनको अधिक सुख होता है, यह जनानेके लिये *'प्रमुदित'* शब्द दिया। माता आदि *'मुदित'* हैं, राजा *'प्रमुदित'* होते हैं। इसीसे यहाँ 'प्र' उपसर्ग अधिक दिया। [रानियोंका एक ही मनोरथ था, अतः वे रूप देखकर प्रसन्न होती हैं और राजा रूप तो देखते ही हैं, साथ ही उनके गुण-शील-स्वभाव भी देखते-सुनते हैं। वे केवल दुलहिनोंको देखकर मुदित होती हैं और वे श्रीरामरूप-गुणादिसे प्रसन्न होते हैं। अतः रानियोंको *'मुदित'* और राजाको *'प्रमुदित'* कहा (प्र० सं०) पुनः भाव कि श्रीभरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्नजीके रूपगुणादि देख-सुनकर *'मुदित'* होते हैं और श्रीरामजीके रूपादि देख-सुनकर *'प्रमुदित'* होते हैं। (प्र० सं०) अथवा गुणशील आदि देख-सुनकर सोचते हैं कि ये इन सबोंसे सुशोभित हैं, अब इनको राज्य मिलना चाहिये। हृदयमें बारंबार यह विचार उठनेसे *'प्रमुदित'* हो रहे हैं। (मानसमयङ्क) यथा—'**एषा ह्यस्य परा प्रीतिर्हृदि संपरिवर्तते। कदा नाम सुतं द्रक्ष्याम्यभिषिक्तमहं प्रियम्॥**' (वाल्मी० २। १। ३७) आगे *'राम सुजस सुनि अतिहि उछाहू।'* से भी यह भाव पुष्ट होता है।

नोट—५ *'देखि सुनि'* इति। राजा नित्य इनके रूप, गुण, शील आदिको देखते थे। यथा—'**एतैस्तु बहुभिर्युक्तं गुणैरनुपमैः सुतम्। दृष्ट्वा दशरथो राजा चक्रे चिन्तां परंतपः॥**' (२। १। ३५) अर्थात् शत्रुसंतापी राजा दशरथने इस प्रकारके अनेक सुन्दर गुणोंसे पुत्रको विभूषित देखकर मनमें विचार किया। क्या गुण देखे, इनका वर्णन श्लोक ६ से ३४ तक है। आगे श्लोक ३८ से ४१ तकमें राजाका मनमें गुणोंको गुनना पाया जाता है। नारदादिसे, वेदार्थविज्ञ बड़े-बूढ़ोंसे, मन्त्रियोंसे, पुरवासियोंसे तथा बाहरसे आये हुए राजाओं आदिसे सुना है, वे श्रीरामजीकी प्रशंसा बारंबार किया करते थे। यथा—'**भगवन् राममखिलाः प्रशंसन्ति मुहुर्मुहुः। पौराश्च निगमा वृद्धा मन्त्रिणश्च विशेषतः॥**' (अ०रा० २। २। २) (यह राजाने स्वयं वसिष्ठजीसे कहा है।) नागरिक और राज्यके प्रजाप्रतिनिधियोंकी ओरसे सामन्त राजाओंने श्रीदशरथजीसे श्रीरामजीके गुणोंका वर्णन वाल्मी० २। २ (श्लोक २७ से ५४ तक) में किया है; जिसे सुनकर राजा प्रसन्न हुए; पर ये गुण उस समय कहे गये हैं जब राजाने अपना मत उनसे प्रकट किया था कि हम रामका राज्याभिषेक करना चाहते हैं।

टिप्पणी—९ (क) पुरवासियोंको दर्शनसे सुख, यथा *'सब बिधि सब पुरलोग सुखारी। रामचंद मुखचंदु निहारी॥'* माताओंको विवाहसे सुख, यथा—*फलित बिलोकि मनोरथ बेली'* क्योंकि माताओंको पुत्रके विवाहकी इच्छा रहती है और राजाको पुत्रके रूप, गुण, शील, स्वभावकी इच्छा रहती है। माताका सुख कहा—'**मुदित** *मातु'* वैसे ही यहाँ पिताका सुख कहना था। पर पिता न कहकर राजाका सुख कहा—*'देखि सुनि राऊ।'* क्योंकि राजाको सदा योग्य उत्तराधिकारीकी चाह रहती है, वे इनमें राज्यशासनके समस्त गुण देख-सुनकर प्रसन्न हो रहे हैं। पुत्रमें गुण जानकर मुदित हैं और ये राज्यशासनके योग्य हैं यह जानकर प्रमुदित हैं। (ख) यहाँ उत्तरोत्तर एकसे दूसरेका सुख अधिक दिखाया है। पुरलोग 'सुखारी' हैं, माताएँ मुदित और राजा 'प्रमुदित'। 'सुखारी' से 'मुदित' और 'मुदित' से 'प्रमुदित' विशेष हैं।

दो०—सबके उर अभिलाषु अस कहहिं मनाइ महेसु।
आपु अछत जुवराजपद रामहिं देउ नरेसु॥१॥

शब्दार्थ—**अभिलाषु**=इच्छा। **मनाइ**=मनाकर, मन्नत मानकर, विनती करके। **आपु**=अपने। **अछत**=[अकर्मक क्रिया 'अछना' का कृदन्तरूप जिसका प्रयोग क्रियाविशेषणकी तरह होता है। सं० **अस् अस्ति**। प्राकृत अच्छ=होना] रहते हुए, उपस्थितिमें, सामने। (श० सा०) वा, अच्छत=(अक्षत=नहीं टूटा हुआ) जीते-जी—(वि०टी०)। **देउ**=दे दें। '**जुवराजपद**'—युवराज शब्दका अर्थ होता है 'युव' (जवान) राजा, पर इसका प्रयोग इस अर्थमें होता है—राजाका वह राजकुमार वा सबसे बड़ा लड़का जिसे आगे चलकर राज्य मिलनेवाला हो, चाहे वह जवान हो चाहे बुड्ढा। युवराजपद=युवराज्य, युवराजत्व, युवराजकी पदवी, राज्याधिकार।

अर्थ—सबके मनमें यह अभिलाषा है और सब महादेवजीको मनाकर प्रार्थना करते हैं कि राजा अपने जीते-जी ही रामजीको युवराज्य दे दें॥ १॥

नोट—१ ऊपर सबके आनन्दको पृथक्-पृथक् कहा, अब यहाँ सबको एकत्र करते हैं, क्योंकि सबके चित्तमें अब यही एक अभिलाषा सर्वोपरि है। इसमें सब एकमत हैं।

टिप्पणी—१ (क) '*सबके उर अभिलाषु*'— राजाने वसिष्ठजीसे कहा है—'*सबहिं राम प्रिय जेहि बिधि मोहीं॥*' (३। ३) इसीसे जैसे राजाको अभिलाषा है वैसे ही सबके हृदयमें अभिलाषा है। हृदयमें रखे हैं, प्रकट कह नहीं सकते; क्योंकि यह बात प्रकट कहने योग्य नहीं है, विरुद्ध है; क्योंकि राजा प्रतिज्ञापत्र लिख चुके हैं जिसके अनुसार भरतजीको युवराज होना चाहिये (विशेष नोट ३ में देखिये)। इसीसे मनाते हैं कि राजा स्वयं प्रसन्न होकर श्रीरामजीको युवराज कर दें, यही इच्छा है, उनसे यह बात कही कैसे जाय। (ख) '*कहहिं मनाइ महेसु*'—मनाकर कहते हैं, क्योंकि वर माँगनेसे मिलता है। देवता अन्तर्यामी होते हैं तो भी वर माँगनेको कहते हैं। (*यथा—'प्रभु सर्वज्ञ दास निज जानी।"माँगु माँगु बरु भै नभ बानी।'* (१-१४५) '*माँगहु बर जोइ भाव मन"।*' (१-१४८) '*सकुचि बिहाइ माँगु नृप मोही।*' (१-१४९) इत्यादि)। '*मनाइ महेसु*' का भाव कि ये महान् ईश हैं, श्रीरामजीको युवराज्यपद देना महान् कार्य है, यह वे ही कर सकते हैं। क्योंकि ये सबके उरप्रेरक हैं, महान् दाता हैं, अवढरदानी हैं, थोड़ेहीमें और शीघ्र प्रसन्न होते हैं, यथा—'*सुमिरि महेसहिं कहइ निहोरी। आसुतोष तुम्ह अवढर दानी"तुम्ह प्रेरक सबके हृदय"।*'(२-४४) (ग) '*आपु अछत"*' कहनेका भाव कि युवराज्यपद राजा ही दे सकता है, यथा—'*जेहि पितु देइ सो पावइ टीका।*' (पुन:'*आपु अछत*' का भाव कि यद्यपि राजा धर्मपूर्वक पृथिवीका पालन कर रहे हैं और अभी आगे भी उसी तरह पालन करनेको समर्थ हैं तो भी श्रीरामको यह भार दे दें।)

नोट—२ सब चाहते हैं कि इनको युवराज्य मिले क्योंकि ये सबको प्राणप्रिय हैं, यथा—'*प्रानहु तें प्रिय लागत सब कहुँ रामकृपाल।*' (१। २०४) दूसरे, इससे कि कुल-रीति भी है कि '*जेठ स्वामि सेवक लघु भाई। यह दिनकर कुल रीति सुहाई॥*' (१५-३) तीसरे, सबको विश्वास है कि इनके राजा होनेसे हम सबका कल्याण है, अत: चाहते हैं कि ये युवराज हों। यथा—'**तं देवदेवोपममात्मजं ते सर्वस्य लोकस्य हिते निविष्टम्। हिताय नः क्षिप्रमुदारजुष्टं मुदाभिषेक्तुं वरद त्वमर्हसि॥**' (वाल्मी० २। २। ५४) पुरवासियोंने श्रीरामजीके गुणोंका वर्णन करके यह बात राजासे कही कि लोकहितमें लगे हुए देवदेव विष्णुके तुल्य अपने पुत्र श्रीरामजीका जिनके गुण उदार हैं, हम सबोंके कल्याणके लिये राज्याभिषेक शीघ्र कर दीजिये। उनमें लोकोत्तर कल्याणकारी गुण हैं, लोकमें उनके समान दूसरा सत्पुरुष कोई नहीं है। वे श्रीरामजीके गुणोंपर इतने मुग्ध हैं कि वे राजाके जीते-जी इनको युवराज देखना चाहते हैं। अथवा युवराजके लिये मनाते हैं; क्योंकि युवराज हो जानेसे फिर ये ही राजा होंगे इसमें सन्देह नहीं।

नोट ३—वे राजासे प्रत्यक्ष क्यों नहीं कहते? इसका एक कारण तो यह है कि प्रजा डरती है कि हमारे कहनेसे राजा कहीं यह न समझें कि प्रजा हमसे दु:खी है, इसीसे दूसरेको राजा बनाना चाहती है। वाल्मीकीयके—'**कथं नु मयि धर्मेण पृथिवीमनुशासति। भवन्तो द्रष्टुमिच्छन्ति युवराजं महाबलम्॥**' (२-२५) अर्थात् मैं तो धर्मपूर्वक पृथ्वीका पालन कर ही रहा हूँ फिर महाबलवान् एक युवराज देखनेकी इच्छा आप लोग क्यों करते हैं। इन वाक्योंसे यह संदेह होना निर्मूल नहीं जान पड़ता, यद्यपि ये वचन राजाने अनजान-से बनकर उन लोगोंका अभिप्राय जाननेके लिये कहे थे। यथा—'**इति तद्वचनं श्रुत्वा राजा तेषां मनःप्रियम्। अजानन्निव जिज्ञासुरिदं वचनमब्रवीत्॥**' (वाल्मी० २-२३)

दूसरा कारण सत्योपाख्यान और गर्गसंहिताके आधारपर यह कहा जाता है कि श्रीदशरथमहाराज केकयराजसे प्रतिज्ञाबद्ध हो चुके थे कि कैकेयीका पुत्र राज्यका अधिकारी होगा। प्रजा डरती है कि हमारे कहनेसे राजा हमको एकरारके प्रतिकूल और भरतके विरोधी जान अधर्मी समझेंगे (बैजनाथ, मा० म०,

पं० रा० कु०।) सत्योपाख्यानके अनुसार एकरार होना ठीक है। परन्तु इस ग्रन्थसे इस बातका ठीक पता नहीं लगता। कैकयी उस एकरार-पत्रका कहीं नाम भी नहीं लेती और न मंथरा ही उसका आश्रय लेती है। थातीरूप दो वरदानोंपर ही वह अपना बल जता रही हैं। कैकेयीजी स्वयं श्रीरामको युवराज बनानेको कई बार कह चुकी हैं। दूसरे प्रतिज्ञापत्रका हाल प्रजाको मालूम नहीं था।

नोट ४—ध्यान रहे कि गोस्वामीजीने अवधी भाषाका प्रयोग बहुत किया है। इस भाषामें पुँल्लिङ्ग शब्द जिनके अन्तमें अकार होते हैं उकारान्त बोले जाते हैं। जैसे चंदु, मातु, अभिलाषु, रामु इत्यादि। संज्ञाहीके विषयमें यह नियम नहीं है वरन् कभी-कभी विशेषण और सर्वनाममें भी यही नियम प्रचलित है। जैसे, एकु, आपु, यहु, इत्यादि।[गीताप्रेसने एक 'मानस-व्याकरण' निकाली है उसे पाठक देखें तो उनको लिपिके सम्बन्धकी बहुतेरी शंकाओंका समाधान वहाँ मिलेगा। अकारान्त पुँल्लिङ्ग शब्दोंके प्रथमा और कहीं-कहीं (जहाँ विभक्तिचिह्न नहीं दिया गया है) द्वितीया विभक्तिके एकवचनमें पदान्तके 'अ' को 'उ' आदेश हो जाता है। पसकामें आज भी उकारका प्रयोग बहुत पाया जाता है।]

आजकलकी हिन्दी भाषामें ये शब्द अकारान्त ही लिखे जाते हैं। पाठकगण जहाँ-जहाँ ऐसे पाठ हैं वहाँ इस बातपर ध्यान रखेंगे।

एक समय सब सहित समाजा। राजसभा* रघुराज बिराजा॥ १॥

† सकल सुकृत मूरति नरनाहू। राम सुजसु सुनि अतिहि उछाहू॥ २॥

शब्दार्थ—**राजसभा**=राजदरबार, राजाओंकी सभा। **बिराजा**=विराजमान थे, बैठे थे। **मूरति**= (मूर्ति), स्वरूप, विग्रह। **नरनाहू**=(नरनाथ), मनुष्योंके स्वामी, राजा। **उछाहू**=(उत्साह) आनन्द।

अर्थ—एक समय रघुकुलके राजा श्रीदशरथजी अपने सब समाज (वा, राजकीय सामग्री)सहित राजसभामें विराजमान थे॥ १॥ राजा समस्त पुण्योंकी मूर्ति हैं। श्रीरामचन्द्रजीका सुन्दर यश सुनकर उन्हें अत्यन्त ही आनन्द होता है॥ २॥

नोट—१ *'एक समय.....'* इति। (क) *'एक समय'* अर्थात् एक बार जिसका निश्चय नहीं करते कि कब। अ०रा० में भी ऐसा ही कहा है, यथा—'**अथ राजा दशरथः कदाचिद्रहसि स्थितः॥**' (२। २। १) वाल्मीकीयके अनुसार विवाहके बारह वर्षोंके पश्चात् तेरहवें वर्षके प्रारम्भकी यह बात है। यथा—'**उषित्वा द्वादश समा इक्ष्वाकूणां निवेशने। तत्र त्रयोदशे वर्षे राजामन्त्रयत प्रभुः॥ अभिषेचयितुं रामं समेतो राजमन्त्रिभिः।**' (३। ४७। ४-५) (श्रीसीताजी यती रावणसे कह रही हैं कि राजाने विवाहके तेरहवें वर्षके प्रारम्भमें मन्त्रियोंकी सलाहसे श्रीरामचन्द्रजीका अभिषेक निश्चित किया।) चैत्रमास था और उस दिन पुनर्वसुका चन्द्रमा था, उसके दूसरे दिन पुष्यनक्षत्रमें अभिषेकका निश्चय राजाने किया था—यह उनके वचनोंसे स्पष्ट है, यथा—'**चैत्रः श्रीमानयं मासः पुण्यः।**' (वाल्मी० २। ३। ४) (यह श्रीवसिष्ठादिसे कहा है), '**श्व एव पुष्यो भविता श्वोऽभिषेच्यस्तु मे सुतः।**' (२। ४। २) (यह राजाने निश्चय किया कि कल पुष्ययोग है, उसीमें मेरे पुत्रका अभिषेक हो। यह निश्चय करके उन्होंने श्रीरामजीसे कहा है कि), '**अद्य चन्द्रोऽभ्युपगमत्पुष्यात्पूर्वं पुनर्वसुम्। श्वः पुष्ययोगं नियतं वक्ष्यन्ते दैवचिन्तकाः॥**' (२। ४। २१-२२), '**तत्र पुष्येऽभिषिञ्चस्व मनस्त्वरयतीव माम्।**' (२२) अर्थात् आज पुष्यके पूर्ववर्ती पुनर्वसुमें चन्द्रमा आया है, अतः कल पुष्ययोग होना निश्चित है यह ज्योतिषी लोग कहते हैं, उसी योगमें अभिषेक करो ऐसा मेरा मन शीघ्रता कर रहा है। ☞ दिन और तिथिका निश्चय न होनेसे *'एक समय'* ऐसा कहा गया। ऐसा भी

* राजसभाँ—गी० प्रे०।

† यह अर्धाली (दोनों चरण) राजापुरकी प्रतिमें नहीं है। अन्य सब प्रतियोंमें है। इसके बिना वर्णनकी शृङ्खला तथा प्रवाह टूटा-सा जान पड़ता है।

कहीं पढ़ा या सुना था कि श्रीरामजन्म, अभिषेक, परधामयात्रा सभी चैत्र शु० ९ को हुए। (ख) श्रीदीनजी कहते हैं कि तुलसीदासजीका स्वभाव है कि जहाँ कहीं 'एक' शब्दका प्रयोग वे करते हैं, वहाँ उनका भाव यह रहता है कि पुनः वैसी बात हुई या है ही नहीं।

टिप्पणी—१ *'एक समय'''''* इति। (क) यहाँसे लेकर आठ चरणोंमें राजाकी बड़ाईका वर्णन है। भाव यह कि जो कुछ सुख इनको मिलना था वह सब मिल चुका; अब उस सुखकी इति लगाते हैं। आगे *'राय सुभाय मुकुरु कर लीन्हा'* से दूसरे प्रसंगका बीज कहते हैं। (ख) *'एक समय'*—भाव कि और सब समय राजाने राजसभामें दर्पण नहीं देखा, एक ही समय ऐसा संयोग हुआ। (ग) *'राजसभा'''''*—राजाको जरठपन उपदेश देगा कि श्रीरामजीको युवराज्य दो, ऐसा उपदेश राजसभामें ही होना चाहिये (क्योंकि यह बात राज्यसम्बन्धी है) इसीसे राजसभामें विराजमान होना कहा। इसी तरह श्रीभरतजीको युवराज्यपद ग्रहण करनेका उपदेश वसिष्ठजीने राजसभामें किया। यथा—*'बैठे राजसभा सब जाई। पठए बोलि भरत दोउ भाई॥'* (१७१। ३) राज्यसम्बन्धी कार्य राजसभामें ही होना चाहिये, इसीसे राजसभामें ही मकुर देखनेसे उपदेश हुआ, नहीं तो पूजाके समय अथवा शृङ्गारके समय मुकुर देखनेसे उपदेश होता, राज्यसिंहासनपर बैठकर दर्पण देखनेका कौन मौका था? यही बात आगे *'सुभाय'''''* शब्दसे कहते हैं। (घ) सभासहित यहाँ राजाकी शोभा कहकर जनाया कि जैसे राजा धर्मात्मा और बुद्धिमान् हैं वैसे ही सब सभा है। (ङ) *'रघुराज'* पद देकर जनाया कि इस सभामें रघुवंशी ही रघुवंशी थे। *'बिराजा'* का भाव यह कि सभा 'राजती है' (शोभित है), उसमें राजा *'बिराजत'* अर्थात् विशेष सुशोभित हैं। (यह रघुवंशियोंकी अन्तिम सभा है, आगे राजाके जीते-जी अब नहीं होनेकी।)

टिप्पणी—२—*'सकल सुकृत मूरति'''''* इति। (क) सुकृतकी मूर्ति कहकर समस्त धर्मोंके ज्ञाता और कर्ता जनाया सुकृतकी मूर्ति हैं इसीसे इनके सुकृतोंसे चौदहों भुवन सुखी हैं, इनके द्वारा समस्त धर्मोंका स्वरूप देख पड़ता है। [अथवा, रामप्रेम होना समस्त सुकृतोंका फल है, यथा—*'सकल सुकृत फल रामसनेहू।'* (१। २७। २) यदि कोई सब धर्म-कर्म करे पर उसमें रामप्रेम न हो तो वे सब धर्म-कर्म व्यर्थ हैं।] (ख) *'नरनाहू'* कहकर राजधर्मकी भी मूर्ति जनाया। (*'सुकृत मूरति'''''* में द्वितीय निदर्शना अलङ्कार है।) (ग)—*'राम सुजसु सुनि अतिहि उछाहू'* इति। रामसुयश श्रवण करना यह दूसरी भक्ति है, जिसे 'श्रवण भक्ति' कहते हैं। जब धर्मसमूह किये जाते हैं तब भक्ति मिलती है, यथा—*'जप जोग धर्म समूह तें नर भगति अनुपम पावई।'* (३। ६) अतएव पहले सकल सुकृतकी मूर्ति होना कहकर—तब रामसुयश सुनना कहा। 'सुकृतमूर्ति' से धर्मात्मा और 'रामसुयश सुनि' से रामप्रेमी बताया। प्रथम धर्मात्मा कहकर तब श्रीरामजीमें प्रेम कहा, क्योंकि रामप्रेम बिना धर्मकी शोभा नहीं, यथा—*'सो सब धरम करम जरि जाऊ। जहँ न रामपद पंकज भाऊ॥'* 'अतिहि उछाहू' का भाव कि सुकृत करनेमें 'उछाह' है और रामसुयशश्रवण' में 'अति उछाह' है। अथवा, रामसुयशश्रवणसे सभा आदि सभीको आनन्द होता है और राजाको अति आनन्द। [पुनः भाव कि राजा सुकृतमूर्ति होनेसे आनंदित रहते ही थे, उसपर भी रामसुयश सुनते हैं इससे उन्हें अति आनंद होता था—(दीनजी)] अथवा, सुकृतसे रामसुयश सुनकर 'उछाह' होता है और राजा तो समस्त सुकृतोंकी मूर्ति हैं इसीसे उनको 'अति उछाह' है। वा, यशसे 'उछाह' और सुयशसे 'अति उछाह'। पुनः, पूर्व कहा था कि *'रामरूप गुन सील स्वभाव'* देखकर राजा 'प्रमुदित' होते हैं। वहाँ 'प्र' उपसर्ग दिया, इसीसे यहाँ भी 'अति' उपसर्ग देते हैं। इसीसे तो वसिष्ठजीने कहा है कि *'सुकृती तुम्ह समान जग माहीं। भयो न है कोउ होनेउ नाहीं॥'* (घ) इससे जनाया कि जिसको श्रीरामसुयश सुननेमें उत्साह और आनन्द होता हो वही सुकृतकी मूर्ति है और जो सुकृतकी मूर्ति है उसीको सुयश श्रवणसे 'अति उछाह' होगा। (ङ) रामसुयश सुननेसे 'अति उछाह' है, इस कथनसे सिद्ध होता है कि सभामें किसीने सुयश सुनाया था।

नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषे। लोकप करहिं* प्रीति रुख राखे॥ ३॥
तिभुवन तीनि काल जग माहीं। भूरि भाग दसरथ सम नाहीं॥ ४॥
मंगलमूल राम सुत जासू। जो कछु कहिय थोर सबु तासू॥ ५॥

शब्दार्थ—'**नृप**' (नृ=मनुष्य+पा=पालन करना)=राजा। '**लोकप**'=लोकपाल; ये ८ हैं, यथा—'*रवि, ससि, पवन, बरुन, धनधारी।, अगिनि, काल, जम सब अधिकारी॥*' (१-१८१) रवि नैर्ऋती (दक्षिण-पश्चिम कोण) के, शशि ऐशानी (उत्तर-पूर्वके मध्य) के, पवन बायवी (उत्तर-पश्चिमके मध्य) के, वरुण पश्चिमके, धनद कुबेर उत्तरके, अग्निदेव (वह्नि) आग्नेयी (पूर्व-दक्षिणके मध्य) के, काल पूर्वके और यम दक्षिण दिशाके अधिकारी हैं। गोस्वामीजीकी चौ० के अनुसार 'काल' पूर्वदिशाके पालक हैं और पुराणोंके अनुसार इन्द्र पूर्वके दिक्पाल हैं। '**रुख राखे**'—'रुख रखना' मुहावरा है, प्रीतिकी इच्छा रखनी, राजी रखना, अनुकूल रहकर। '**तिभुवन**'=त्रिभुवन, त्रैलोक्य, तीनों लोक—स्वर्ग, मर्त्य (पृथ्वी), पाताल। '**भूरि**'=समूह, बहुत बड़ा। '**भूरिभाग**=बड़भागी, अत्यन्त भाग्यवान्। **जासू**=जिसके। '**तासू**'=उसके लिये।

अर्थ—सब राजा उनकी कृपाके अभिलाषी (इच्छुक) रहते हैं। लोकपाल उनका रुख रखते हुए प्रीति करते हैं (क्योंकि जानते हैं कि इनकी सन्तानद्वारा हमारी रक्षा होगी)॥ ३॥ त्रैलोक्यमें और भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालमें जगत्‌भरमें श्रीदशरथजीके समान अत्यन्त भाग्यवान् (कोई दूसरा) नहीं है॥ ४॥ मङ्गलोंके मूल श्रीरामचन्द्रजी जिनके पुत्र हैं उनके लिये जो कुछ कहा जाय सब थोड़ा ही है॥ ५॥

नोट—१ ***नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषे।*****'** इति। इस चौपाईसे राजाका प्रभाव लोकपालोंपर प्रकट किया गया है। भाव यह कि लोकपाल भी वही काम करते हैं जिससे राजा दशरथ अप्रसन्न न हों। अर्थात् अपने-अपने लोकोंमें स्वतन्त्र अधिकारी होनेपर भी राजा दशरथसे दबते रहते हैं। ***'रहहिं प्रीति०'*** पाठमें फर्क केवल इतना रहता है कि इसमें इच्छा ही रखना प्रकट होता है और उसमें करना भी पाया जाता है। (दीनजी)

टिप्पणी—१ *'नृप सब रहहिं'''''।'* इति। (क) सब अर्थात् पृथ्वीभरके राजा। कृपाकी अभिलाषा करते हैं अर्थात् किंकर (मैं क्या करूँ? क्या आज्ञा है?) की तरह सब नृप सेवक हैं, दशरथमहाराज सार्वभौम सम्राट् राजा हैं। (ख) ***'लोकप करहिं प्रीति रुख राखे'*** इति। प्रीति बराबरवालोंमें होती है; यथा—***'प्रीति बिरोध समान सन करिय नीति असि आहि'*** इससे जनाया कि लोकपाल बराबरके हैं यथा—***'ससुर चक्कवइ कोसलराऊ। भुवनचारिदस प्रगट प्रभाऊ॥ आगे होइ जेहि सुरपति लेई। अर्धसिंघासन आसन देई॥'*** और रुख रखे रहते हैं यह कहकर जनाया कि राजा उनकी रक्षा करते हैं; यथा—***'सुरपति बसइ बाँहबल जाके।'*** (२५। २) [प्रीति मित्रवर्ग (बराबरवालों) में होती है, इसीसे 'रुख रखकर' प्रीति करना कहा, क्योंकि आगे लोकपालोंका राजाके बाहुबलसे बसना भी कहा है।''''रुख रखकर प्रीति स्वामीमें की जाती है। (प्र०सं०)] पुनः कृपाकी अभिलाषा बड़ेसे की जाती है और प्रीति बराबरवालेसे। लोकपालोंके समान हैं। राजा अष्टलोकपालोंका शरीर कहा गया है, यथा—'**अष्टानां लोकपालानां वपुर्धारयते नृपः॥**' (मनु० ५। ९६) (विशेष १। २८। ८ ***'ईस अंस भव परम कृपाला'*** में देखिये) ***'करहिं प्रीति रुख राखे'*** से यह भी जनाया कि राजा यद्यपि उनकी सहायता करते हैं तथापि उनसे प्रत्युपकारकी इच्छा नहीं रखते। यही कारण है कि राजाकी ओर प्रीति करना और रुख रखना नहीं लिखते। राजा नरलोकमें हैं, इसीसे प्रथम नरलोकके राजाओंको कहा, पीछे लोकपालोंको। (ग) इन दो चरणोंसे जनाया कि सब नरराज और सब देवराज राजा दशरथके अधीन हैं। यह स्वार्थकी सीमा कही। आगे परमार्थकी सीमा कहते हैं। (घ) ***'नृप सब'*** से मर्त्यलोकके और ***'लोकप'*** से स्वर्गलोकके समस्त राजाओं और अधिकारियोंको कहा। पातालवासियों और राक्षसोंको नहीं कहा; क्योंकि दैत्य, दानव, राक्षस प्रीति नहीं करते और न राजाकी कृपा

* यह पाठ भागवतदास, काशी, राजापुर और पं० रामगुलामकी प्रतियोंमें है। 'रहहिं' पाठान्तर है।

चाहते हैं; क्योंकि वे अभिमानी हैं। वे तामसी स्वभावके होते हैं। वे न तो कृपाके योग्य हैं और न प्रीतिके ही अधिकारी हैं। (ङ) प्रथम राजाको सुकृतोंकी मूर्ति कहकर तब *'नृप सब रहहिं·····'* कहनेका भाव कि राजा दशरथ बड़े धर्मात्मा हैं, सब राजा उनकी कृपाकी दृष्टिकी चाहसे धर्ममें परायण रहते हैं, धर्मसे प्रजाका पालन करते हैं, क्योंकि इससे राजा प्रसन्न होते हैं। प्रजाका पालन राजाओंका मुख्य धर्म है, यथा—*'सोचिय नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना॥'* (१७२। ४), *'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥'* (७१। ६) इसीसे यहाँ *'नृप'* शब्द दिया। *'नृन् पातीति नृपः'* जो मनुष्योंका पालन करे वही 'नृप' है। (च) यहाँ 'अतिशयोक्ति अलङ्कार है। क्योंकि इन चरणोंसे राजाकी अतिशय बड़ाई सूचित होती है।

नोट—२ शङ्का—बालकाण्डमें कहा है कि—*'भुजबल बिस्व बस्य करि राखेसि कोउ न सुतंत्र। मंडलीक मनि रावन राज करै निज मंत्र॥'* (१। १८२) फिर यहाँ राजा दशरथसे राजाओं और लोकपालोंका यह बर्ताव कैसा, जब कि *'ब्रह्मसृष्टि जहँ लगि तनुधारी। दसमुख बसबर्ती नर नारी॥'* (१। १८२)

समाधान—रावणने अपने बाहुबलसे प्रायः सारे विश्वको जीत रखा था; परन्तु किसीके हृदयपर उसने विजय नहीं पायी थी। राजा उससे काँपते थे, परंतु वह भी राजा दशरथकी प्रीतिका खयाल करके अपना काम करते थे। हेतु यह था कि रावण जिन लोगोंको जीत नहीं सकता था उनमेंसे एक रघुवंश भी था और रघुवंश रघुके समयसे ही चक्रवर्ती माने जाते थे। इसलिये राजाओंका इनकी कृपाका अभिलाषी होना स्वभाविक ही था और लोकपाल तो इस हेतुके अतिरिक्त इसलिये भी प्रीतिरुख रखे रहते थे कि इस कुलके द्वारा रावणका विनाश भी होगा। और वह समय भी अत्यन्त निकट था। (गौड़जी)

टिप्पणी—३-*'तिभुवन तीनि काल जगमाहीं।·······'* इति। (क) यहाँ 'त्रिभुवन' कहकर फिर *'जग'* भी कहा। दोनोंका अर्थ एक ही होता है। फिर ये दोनों शब्द यहाँ किस भावसे आये? इसका समाधान महानुभावोंने यों किया है—

(१) दीनजी—*'जग'* शब्दका अर्थ है 'चलायमान'। गोस्वामीजी यहाँ यह भाव प्रकट करना चाहते हैं कि वे त्रिभुवन जो नाशवान् हैं उनमें जो व्यक्ति राजा दशरथके समान भाग्यवान् नहीं है। यदि कोई स्थायी भुवन हो तो उसकी बात हम नहीं कहते। हमारी पहुँच जहाँतक है वहींतककी हम कह सकते हैं। यहाँ 'जग' शब्द *'तिभुवन'* का विशेषण है, अर्थात् वे त्रिभुवन जो जग हैं। पुनः, *'जगमाहीं'*=जंगममें, चैतन्य जीवोंमें।

(२) गौड़जी—इसका अर्थ यह है—उस जगत्‌में (जिसमें चतुर्दश भुवन; और देशकालातीत सृष्टि भी अन्तर्गत है) तीन भुवन (अर्थात् भू मर्त्यलोक, भुवर् पितृलोक, स्वर् देवलोक) और तीन कालके समान कोई बड़भागी नहीं है।

(३) बाबा रामदासजी—अर्थात् इस जगत्‌में जैसे बड़भागी दशरथ हैं वैसा भाग्यवान् त्रिलोकमें कोई नहीं, यथा—*'अधिक कहा जेहि सम जग नाहीं।'* (२०९। ८)

(४) किसीका मत है कि प्रथम त्रिभुवन कहा फिर सोचे कि विश्वमात्रमें, चौदहों भुवनोंमें ऐसा बड़भागी कोई नहीं है। अतः 'त्रिभुवन' कहकर फिर 'जग' भी कहा।

टिप्पणी—२ *'तिभुवन तीनिकाल···'* इति। (क) बिना तीन कालके कहे *'भूरिभाग दसरथ सम नाहीं'* यह बचन न सिद्ध होता। केवल एक (वर्तमान) कालके कहनेसे दूसरे (भूत और भविष्य) कालोंमें इनकी समता पायी जाती। तीनों कालोंमें तीनों लोकोंसे इनका भाग्य अधिक उत्कृष्ट होनेसे *'भूरिभाग···'* कहा। (ख) स्वार्थ और परमार्थ दोनोंसे परिपूर्ण भाग्य जनानेके लिये *'तिभुवन तीनि काल·····'* यह अर्धाली बीचमें लिखी। पूर्व *'नृप सब रहहिं·····राखे'* में स्वार्थसे पूर्ण कहा और आगे *'मंगलमूल·····'* परमार्थसे पूर्ण कहते हैं। भाव यह कि जिन चक्रवर्ती महाराजके सब राजा सेवक हैं और जिनका दिक्‌पाल रुख रखते हैं उनके यहाँ चतुर्व्यूह अवतार हुआ, उनके समान स्वार्थ-परमार्थसे पूर्ण भाग्यवान् कौन हो सकता है?

(ग) त्रिभुवन कहकर जनाया कि देवताओं, मनुष्यों और असुरोंमें कहीं भी ऐसा भाग्यवान् कोई नहीं है। और जितने चक्रवर्ती हुए या होंगे उनके यहाँ भगवान्‌का अवतार नहीं हुआ और न होगा। और जिन-जिनके यहाँ अवतार हुआ वे चक्रवर्ती न थे। राजा दशरथमें दोनों बातें हैं। ये चक्रवर्ती भी हैं और इनके यहाँ ब्रह्मका अवतार भी हुआ। (घ) *'जग माहीं'*—'त्रिभुवन कहकर जगत्‌को पृथक् कहते हैं, यथा—*'मम अनुरूप पुरुष जग माहीं। देखेउँ खोजि लोक तिहुँ नाहीं॥'* (शूर्पणखोक्ति) (ङ) *'भूरिभाग दसरथ सम नाहीं'*—अर्थात् जब इनके समान ही कोई नहीं है तब अधिक किसको कहें? यथा—*'दशरथ गुनगन बरनि न जाहीं। अधिक कहा जेहि सम जग नाहीं॥'* (२०९। ८) श्रीदशरथजीके सुकृतोंका फल उत्तरोत्तर यहाँतक लिखते आये। उत्तरोत्तर अधिक उत्कर्ष दिखाते आ रहे हैं। *'नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषे'* पृथ्वीके सब नृप वशवर्ती हैं यह प्रथम कहा। *'लोकप करहिं प्रीति रुख राखे'* अर्थात् लोकपाल भी अधीन हैं, यह फल प्रथमसे उत्कृष्ट है। (*'तिभुवन तीनि……'* अर्थात् वर्तमान कालके नृपालों और लोकपालोंकी कौन कहे, तीनों कालोंके नृपों और सुरपतियोंमें किसीका भाग्य ऐसा नहीं, यह पूर्वोक्त दोनोंसे अधिक है) और *'मंगलमूल……'* यह उससे भी उत्कृष्ट है।

टिप्पणी ३—*'मंगलमूल राम सुत जासू।……'* इति। (क) श्रीरामजी समस्त मङ्गलोंके मूल हैं। जब वे स्वयं आकर पुत्र हुए तब समस्त मङ्गल स्वयं ही आकर प्राप्त हो गये। यथा—*'मंगल सगुन सुगम सब ताकें। सगुन ब्रह्म सुंदर सुत जाकें॥'* (३०४। १) (ख) राजा सुकृतोंकी मूर्ति हैं और श्रीरामजी मङ्गलके मूल हैं यह कहकर जनाया कि सुकृतसे मङ्गल होते हैं, इसीसे दशरथजीसे श्रीरामजी हुए। यथा—*'दसरथ सुकृत राम धरे देही।'* (ग) बालकाण्डमें श्रीरामजीको *'मंगलभवन'* कहा था, यथा—*'मंगलभवन अमंगलहारी। द्रवौ सो दसरथ अजिर बिहारी॥'* (१। ११२। ४) और यहाँ *'मंगलमूल'* कहते हैं। तात्पर्य कि श्रीरामजी मङ्गलके निवासस्थान हैं और मङ्गलकी उत्पत्ति भी करते हैं, दोनों गुण कहे। [मङ्गलमूल अर्थात् मङ्गलोंके कारण हैं, दूसरे भी इनके द्वारा मङ्गलभवन हो जाते हैं। मङ्गलमूल कहकर इनको ब्रह्मका अवतार सूचित किया।……(प्र०सं०)] (घ) *'जो कछु कहिअ थोर सब तासू'* इति। राजाको सुकृतोंकी मूर्ति कहकर फिर जो उनके फल कहते हुए अन्तमें कहा कि त्रिकालमें तीनों लोकोंमें उनके समान भाग्यवान् नहीं, यह अत्यन्त बड़ाई है। यह कहकर जब श्रीरामजीका इनके पुत्र होना कहा, तब सिवाय इसके और क्या कहा जा सकता है, इससे हद है, यह बड़ाईकी अन्तिम सीमा है, जो कुछ भी बड़ाई कही जाय वह सब थोड़ी ही है, कुछ नहींके बराबर ही होगी। त्रिलोकीके पदार्थ श्रीरामजीसे थोड़े (लघु, तुच्छ) हैं, (और जो कुछ कहा जायगा वह त्रिलोकीमेंसे ही कहा जायगा) अतएव जो कुछ भी कहा जाय सब थोड़ा होगा। भाव यह कि श्रीरामजी इनके पुत्र हुए, इससे इनकी बड़ाई कोई नहीं कर सकता। यथा—*'कहहु तात केहि भाँति कोउ करिहि बड़ाई तासु। राम लषन तुम्ह सत्रुहन सरिस सुअन सुचि जासु॥'* (१७३) ब्रह्म एक इन्हींके प्रेमवश होकर इनका पुत्र हुआ, इतना ही नहीं इनको वात्सल्यसुख भी दिया जो किसी अन्य अवतारमें किसीको नसीब न हुआ। ऐसा भाग्य किसका हुआ। —*'जासु सनेह सकोच बस राम प्रगट भए आइ। जे हर हिय नयननि कबहुँ निरखे नहीं अघाइ॥'* (२०९) इससे अधिक बड़ाई नहीं है। इसीसे यहाँ बड़ाई (वर्णन) की समाप्ति की।

नोट—उत्तरोत्तर उत्कर्ष-वर्णनमें 'सार अलङ्कार' है। *'जो कछु कहिअ……'* में 'सम्बन्धातिशयोक्ति अलङ्कार' है।

राय सुभाय मुकुरु कर लीन्हा। बदनु बिलोकि मुकुट सम कीन्हा॥ ६॥
श्रवन समीप भए सित केसा। मनहुँ जरठपनु अस उपदेसा॥ ७॥
नृप जुबराजु राम कहुँ देहू। जीवन जनम लाहु किन लेहू॥ ८॥

शब्दार्थ—राय=राजा। सुभाय=स्वभावसे, स्वाभाविक, सहज ही। **मुकुरु**=दर्पण, शीशा, आइना। **कर**=हाथ।

बदनु=मुख, मुँह। **सम**=सीधा। **श्रवन**=कान। **सित**=श्वेत, सफेद। **केसा** (केश)=बाल। **जरठपन**=वृद्धावस्था, बुढ़ापा। **उपदेसा**=उपदेश किया। **जुबराज**=युवराजपद। **कहुँ**=को। **लाहु**=लाभ। **किन**=क्यों नहीं।

अर्थ—राजाने सहज ही हाथमें शीशा ले लिया, उसमें अपना मुख देखकर मुकुटको सीधा किया॥ ६॥ (देखा कि) कानोंके पास बाल सफेद हो गये। मानो बुढ़ापा ऐसा उपदेश कर रहा है॥ ७॥—'राजन्! श्रीरामजीको यौवराज्य दे दीजिये। अपने जीवन और जन्मका लाभ क्यों नहीं ले लेते?'॥ ८॥

टिप्पणी—१—*'राय सुभाय'''* इति। (क) *'सुभाय'* का अन्वय सबके साथ है। स्वभावसे ही मुकुर हाथमें लिया, स्वभावसे ही बदनका अवलोकन किया। नहीं तो यदि दर्पण देखनेकी इच्छा रही होती तो सेवक दिखाते। (ख) इन चौपाइयोंका सम्बन्ध *'एक समय सब सहित समाजा'''* से है। बीचमें राजाका ऐश्वर्य वर्णन करने लगे थे। अब फिर वहींसे प्रसङ्गको उठाते हैं। (ग) बिना अपनी ओर निगाह किये (उपदेशक उपदेश नहीं देता) उपदेश नहीं होता। राजाने अपना रूप देखा तब उपदेश हुआ।

प्र० सं०—*'सुभाय'* अर्थात् बिना किसी खयाल या प्रेरणाके स्वभावसे ही, जैसे शीशा सामने पड़ा या रखा होनेसे मनुष्य स्वभावसे ही उसे उठाकर देखने लगता है। ऐसा भी हो सकता है कि किसीने दर्पण आगे लाकर रख दिया हो। प्रायः रईसों, राजाओंको दर्पण दिखानेवाले भी हुआ करते हैं। और यह भी सम्भव हो सकता है कि उनमेंसे किसीने मुकुट टेढ़ा बँधा हुआ देख ऐसा किया हो। अस्तु जो हो। राजाने उसे स्वभावसे ही हाथमें ले लिया। उन्होंने कुछ जान-बूझकर श्वेत केश देखनेके लिये शीशा नहीं लिया था। उन्हें इसका शान-गुमान भी न था कि बाल पक गये। (पजाबीजी) पं० रामकुमारजी कहते हैं कि राजसभामें दर्पण लेकर मुँह देखनेका कोई प्रयोजन नहीं, यह समय तो सभाके कार्यका है। इससे जान पड़ता है कि यह केवल प्रभुकी इच्छासे हुआ। अतः *'सुभाय'* शब्द दिया गया। अ०दी० कारका मत है कि मुकुट बायीं ओर झुक गया था, इस तरह मानो वह कहता था कि मैं अब तुमसे विमुख हूँ। इसपर भी राजाने उसे दक्षिण ओर फेरकर सीधा किया। जब उनकी दृष्टि श्वेत केशपर पड़ी तब वे मुकुटके बाम ओर झुकनेका भाव समझे कि वह सूचित करता है कि मैं अब आपके सिरपर नहीं रहना चाहता, पुत्रको यह मुकुट दीजिये।

टिप्पणी— २— *'श्रवन समीप भए'''* इति। (क) श्रवणके समीपके केश श्वेत हुए अर्थात् और सब केश श्याम हैं। भाग्यवान् पुरुषोंको स्वाभाविक ही उपदेश होता है। दुष्कृती पापी अभागीको तो समझानेसे भी ज्ञान नहीं होता। (ख) *'मनहुँ जरठपनु''''* इति। *'मनहुँ'* का भाव कि जरठपनने उपदेश नहीं किया, श्वेत केश देखकर राजाने स्वयं ही विचार किया कि श्रीरामजीको हम युवराज्य दें। श्वेतकेश देखनेपर उनको यह ज्ञान हुआ कि हम वृद्ध हो गये, इसीसे कहा कि मानो जरठपनने उपदेश किया है। पुरवासी शिवजीको मनाते थे, इसीसे शिवजीने प्रेरणा की, जरठपनने उपदेश किया। वृद्धको वृद्ध ही उपदेश करते हैं। यथा—*'जाना जरठ जटायू एहा''''।'*, *'कह सुनु रावन मोर सिखावा।'* (३। २९। १४। १५) *'माल्यवंत अति जरठ निसाचर। रावन मातु पिता मंत्री बर॥ बोला बचन नीति अति पावन। सुनहु तात कछु मोर सिखावन॥'* (६। ४७) राजा वृद्ध (साठ हजार वर्षके) हो गये हैं इसीसे वृद्ध (जरठपन) ने उनको उपदेश किया। यद्यपि अभिलाषा सबके हृदयमें थी तथापि और कोई भी उनको उपदेश न कर सका। (ग) गुप्त बात कानके पास कही जाती है। नीतिमें लिखा है कि जो कार्य भारी हो उसे गुप्त रखे, सबके सामने न प्रकट करे। इसीसे जरठपनने श्रवणके समीप आकर कहा। [मन्त्रोपदेश कानमें ही किया जाता है, यथा—*'कह लंकेस मंत्र लगि काना।'* (६। ११) अतः 'श्रवण समीप' कहा गया।]

नोट—१ *'श्रवन समीप भए सित'''* इति। श्वेत केश वृद्धावस्थाका चिह्न कहा जाता है। प्रथम कानकी जड़में बाल सफेद होते हैं, यथा—'**कृतान्तस्य दूती जरा कर्णमूले समागत्य वक्तीति लोकाः शृणुध्वम्।**' इससे मिलता-जुलता रघुवंशमें यह श्लोक है—'**तं कर्णमूलमागत्य रामे श्रीर्न्यस्यतामिति। कैकेयीशंकयेवाह**

पलितच्छद्मना जरा॥' अर्थात् मानो बुढ़ापा कैकेयीके डरसे श्वेत केशोंका छलरूप धारण करके राजाके कानके पास आकर कहता है कि अपना राज्य श्रीरामचन्द्रजीको दे डालिये।

इन श्लोकोंके शब्दोंसे गोस्वामीजीके शब्दोंका मिलान कीजिये तब '***जरठपनु***' शब्दका चमत्कार और पूज्य कविकी बुद्धिकी उत्कृष्टता समझमें आवेगी। देखिये श्लोकोंमें '*जरा*' पद आया है। '***जरा***' स्त्रीलिङ्ग है, 'नृप' और 'राय' पुँल्लिङ्ग हैं। स्त्रीसे पुरुषको, फिर ऐसे बड़े चक्रवर्ती महाराजको और वह भी सभाके बीच उपदेश कराना कहाँतक योग्य होगा, इसपर पाठक स्वयं विचार कर लें। जान पड़ता है कि इसी विचारसे '***जरठपनु***' पुँल्लिङ्ग शब्द आपकी लेखनीसे निकला है।

नोट २—बुढ़ापेमें बालोंका पकना सिद्ध आधार है, किन्तु बाल मुखवाले जीव नहीं हैं जो शिक्षा दे सकते हों इस अहेतुमें हेतुकी कल्पना करना 'सिद्धविषया हेतूत्प्रेक्षा अलङ्कार' है। (वीर)

टिप्पणी—३—'***जुबराज राम कहँ देहू।*****' इति। भाव कि श्रीरामजीको युवराज्य देना जन्मका लाभ है, यथा—'***कहहु तात जननी बलिहारी। कबहिं लगन मुद मंगलकारी॥*****जनम लाभ कइ अवधि अघाई।***' (५२। ७। ८) जीवनका लाभ क्यों नहीं लेते; भाव कि अब मृत्युका समय आ गया। जरा मृत्युकी दूती है, मृत्यु हो जायगी तो पछताओगे। यथा—'***पुनि न सोच तनु रहउ कि जाऊ। जेहि न होइ पाछे पछिताऊ॥***' राजाने विलम्ब किया इसीसे कहा कि विलम्ब क्यों करते हो। वृद्धको परमार्थका उपदेश करना चाहिये इसीसे जरठपनने श्रीरामको युवराज्य देनेका उपदेश किया ['***देहू***' और '***लेहू***' से जनाया कि आप ही ढील किये हैं। विलम्बका अवसर नहीं है। जीवनका लाभ उठाना हो तो तुरत युवराज बनाइये। '***किन लेहू***' अर्थात् जीवन और जन्म सफल करना आपके हाथ है, यह लाभ अपनेको प्राप्त ही समझिये, पर आप ही उसे नहीं लेते] जब यह विचार आया तब दर्पण देखना बंद कर दिया।

दोहा—यह बिचारु[1] उर आनि नृप सुदिन[2] सुअवसरु पाइ।
प्रेम पुलकि तनु मुदित मन गुरहि सुनाएउ जाइ॥२॥

शब्दार्थ—**उर आनि**=हृदयमें लाकर, मनमें निश्चित करके। पुलक=प्रेम, हर्ष आदिके उद्वेगसे रोमकूपों वा रोमका खड़ा होना, रोमाञ्च। **पुलकि**=रोमाञ्चित होकर।

अर्थ—यह विचार मनमें निश्चित करके राजाने अच्छा दिन और अच्छा मौका पाकर पुलकितशरीर हो, प्रसन्न मनसे गुरुजीके पास जाकर उनको सुनाया॥२॥

टिप्पणी—१'***यह बिचारु उर आनि***...' इति। (क) इससे जनाया कि जरठपनने गुप्त उपदेश किया। उसे राजाहीने जाना और किसीने नहीं। इसीसे राजाने भी गुप्त रखा, विचारको अभी सभामें नहीं प्रकट किया। [विचार सहसा प्रकट न करना चाहिये, हृदयमें रखना चाहिये। अतः '***बिचारु उर आनि***' कहा। ऐसा ही पुरवासियोंके सम्बन्धमें पूर्व कहा है, यथा—'***सबके उर अभिलाषु अस*****' (प्र० सं०)] (ख) '***यह बिचारु***' अर्थात् हम वृद्ध हुए, श्रीरामजीको युवराज्य देकर जीवन और जन्मका लाभ क्यों न लें, इस विचारको (जरठपनके उपदेशको)। वाल्मी० २। १ में भी ऐसा ही विचार राजाके मनमें प्रथम उठा, यथा—'**महीमहमिमां कृत्स्नामधितिष्ठन्तमात्मजम्। अनेन वयसा दृष्ट्वा यथा स्वर्गमवाप्नुयाम्॥**' (४०) अर्थात् इस समय पृथ्वीपर अपने पुत्रको शासन करते इस वृद्धावस्थामें देखकर मैं अपने कर्मोंके अनुसार स्वर्ग पाऊँ। इसके पश्चात् उन्होंने औरोंसे कहा है।

टिप्पणी—२—'***सुदिन सुअवसरु पाइ***' इति। (क) इससे राजाकी गम्भीरता दिखायी, सहसा जाकर नहीं कहा। जब राज्याभिषेकके लिये उत्तम दिन और मुहूर्त मिल गया और 'सुअवसर' देखा तब गुरुजीके पास गये। '***सुअवसरु***' यह कि गुरुको अवकाश है, एकान्त है, गुरुजी प्रसन्न बैठे हुए हैं। अच्छे मौकेसे

१. बिचारि—को० रा०। २. सुदिनु—ना०प्र०।

बात न कहनेसे बात व्यर्थ हो जाती है। [शुभ घड़ी, सुन्दर अवसरमें कार्य करनेसे उसकी सिद्धिकी सम्भावना रहती। दूसरे प्रथमसे ही *'सुदिन'* शुभ मुहूर्त शोधवा लिया जिसमें गुरुजीको यह कहनेका मौका न मिले कि अभी दिन अच्छे नहीं हैं। दोनों भाव इसमें आ जाते हैं। *'सुअवसरु'* कार्यसिद्धिके लिये गुरुजीके पास जानेके लिये, *'सुदिन'* अभिषेकके लिये। वाल्मी० रा० में राजाका प्रथमसे ही शुभ मुहूर्तका निश्चय कर लेना स्पष्ट है। यथा—'**चैत्रः श्रीमानयं मासः।**' (२। ३। ४) (प्र०सं०)] (ख) *'प्रेम पुलकि तनु'''* '— बात अच्छी उरमें आयी, दिन अच्छा मिला और अवसर भी उत्तम प्राप्त हुआ इसीसे प्रेमके मारे तन पुलकित हो गया, मनमें प्रसन्नता हुई और गुरुजीसे जा सुनाया। तन, मन, वचन तीनोंसे कार्यमें राजाकी तत्परता दिखायी। (ग) *'जाइ'* से पाया गया कि गुरुजी सभामें न थे। सभामें होते तो उनके सामने मुकुरमें मुँह न देखते।

नोट—स्मरण रहे कि प्रत्येक मङ्गलकार्यके आरम्भमें मानसकारने कार्यारम्भ करनेवालेकी मनकी वृत्ति हर्ष और उत्साहसे भरी हुई दिखलायी है। जहाँ कहीं कार्यारम्भ दिखाया है वहाँ *'हरषि', 'हरषे', 'मुदित', 'पुलकि'* इस तरहके शब्दोंका बराबर प्रयोग किया है। उत्साह वीररसका स्थायी भाव है और हर्ष, आनन्द, मोद, प्रमोद सभी उत्साहके सहगामी हैं। पाठकगण इस एक ही टिप्पणीको ध्यानमें रखकर कार्यारम्भसूचक प्रत्येक स्थलपर स्वयं विचार देखें।

कोई नया विचार उदय होनेपर पहले गुरुसे उसके विषयमें परामर्श करना इस कुलकी समीचीन रीति है।

कहइ भुआल सुनिअ मुनि नायक। भए राम सब बिधि सब लायक॥ १॥
सेवक सचिव सकल पुरबासी। जे हमरे* अरि मित्र उदासी॥ २॥
सबहि राम प्रिय जेहि बिधि मोही। प्रभु असीस जनु तनु धरि सोही॥ ३॥
बिप्र सहित परिवार गोसाईं। करहिं छोह सब रौरिहि नाईं॥ ४॥

शब्दार्थ—**भुआल**=(भू+पाल) राजा। **सचिव**=मन्त्री। **नायक**=स्वामी, अधिपति, अगुआ। **उदासी**=(उद्=ऊपर, **आसीन**=बैठा हुआ) विरक्त, शत्रु-मित्र-रहित, जिसका मन संसारसे हट गया हो। **सोही**=सुशोभित हुई है, सोह रही है। **छोह**=कृपा, दया, प्रेम। **रौरिहि**=(रावरेहि) आपहीके। **नाई**=सदृश, समान, तरह। **जेहि बिधि**=जिस प्रकार, जैसे।

अर्थ—राजा कहते हैं—हे मुनिराज! सुनिये। राम सब प्रकारसे सब योग्य हो गये॥ १॥ सेवक, मन्त्री (आदि) सभी पुरवासी, और जो (भी) हमारे शत्रु, मित्र या उदासीन हैं॥ २॥ सभीको राम वैसे ही प्रिय हैं जैसे मुझको। मानो आपका आशीर्वाद ही शरीर धारण करके शोभित हो रहा है॥ ३॥ हे गोसाईं! सब ब्राह्मण सपरिवार आपके ही समान उनपर प्रेम करते हैं॥ ४॥

टिप्पणी—१ *'कहइ भुआल'''* इति। राजाने अपने हृदयकी बात, अपना विचार गुरुको जाकर सुना दिया। यह बात दोहेमें समाप्त होती थी और राजा विस्तारसे कहना चाहते हैं, इसीसे पुनः राजाका कहना लिखते हैं।

नोट—१ 'गोस्वामीजीका यह ग्रन्थ नाटकके समान है। न केवल अमुक-अमुकके विषयमें कुछ-न-कुछ लिखा है पर वे कहते, करते और सोच-विचार भी करते हुए मानो हमारे सामने ही उपस्थित किये जाते हैं। हम मानो तुलसीदासकी नहीं किंतु उन्हीं (पात्रों) की बातें सुनते और उन्हींको देखते हैं। श्रीदशरथजी, कैकेयीजी, मंथरा, श्रीरामजी इत्यादि अन्य पुरुष नहीं किंतु उत्तम पुरुष होकर और नेपथ्यसे निकलकर रंगभूमिमें आते और वार्तालाप करते हैं'—रेवरेण्ड ग्रीब्जके इन वचनोंसे मैं पूरा सहमत हूँ। मेरी समझमें ठीक वैसा ही प्रसङ्ग यहाँ है। कविने प्रथम दोहेमें यह कहा कि राजाने गुरुके पास जाकर अपना विचार

* हमारे—राजापुर। हमार-वीरकवि। हमरे—का०, भा०दा०, वि०त्रि०।

सुनाया। अब वे (राजा) हमारे सामने गुरुसे अपने विचारोंको अपने शब्दोंमें कहते हुए उपस्थित किये जाते हैं। कवि बताते हैं कि उन्होंने क्या कहा, क्या सुनाया।

टिप्पणी—२ (पृथ्वीके पालनके सम्बन्धकी बात कहते हैं अतः '*भुआल*' शब्द दिया।) दोहेमें कहा था कि '***गुरहिं सुनायउ***', वही सुनाना यहाँ लिखते हैं।—'***कहइ भुआल सुनिअ।***' बड़ाई करके प्रार्थना करनी चाहिये, अतः बड़प्पनका सम्बोधन '***मुनिनायक***' कहकर प्रार्थना की। (इसी तरह पार्वतीजीने '***बिस्वनाथ मम नाथ पुरारी***…।' (१। १०७) इत्यादि बड़ाई करके भरद्वाजजीने '***करि पूजा मुनि सुजसु बखानी।***…***करगत बेदतत्व सब तोरे।***' (१। ४५) कहकर तब प्रार्थना की है, इत्यादि।)

नोट—२ '***मुनिनायक***' अर्थात् मुनिश्रेष्ठ, मुनियोंमें अग्रगण्य। 'वसिष्ठजी ब्रह्माजीके पुत्र हैं और बड़े भारी मुनि तो हैं ही। (वे ऐसे श्रेष्ठ ब्रह्मर्षि हैं कि विश्वामित्रजी चाहते थे कि वे हमको ब्रह्मर्षि मानें तब हम जानें कि हम ब्रह्मर्षि हो गये। यथा—'**ब्रह्मपुत्रो वसिष्ठो मामेवं वदतु देवताः।**' (वाल्मी० १। ६५। २४) यह उन्होंने ब्रह्मादि देवताओंसे कहा है), तो भी यहाँ राजा अपने मनोवाञ्छित सिद्धिके लिये गये हैं, अतः इन शब्दोंसे प्रथम गुरुकी प्रशंसा करके तब मनोरथ प्रकट करना उचित ही है।

नोट—३ (क) '***भये***' भूतकाल क्रियासे जनाया कि सब तरहसे योग्य हुए बहुत दिन हो गये। इससे जनाते हैं कि योग्यता तो ताड़कावध, यज्ञ-रक्षा, अहल्योद्धार, धनुष-भंग, परशुराम-गर्व-भंग इत्यादिसे सर्वलोकोंमें विदित है। पुनः, परशुरामसे साम, ताड़काको निजपद अभयदान, मिथिलापुरके सखाओंसे भेद और मारीचादिको दण्ड इति सब विधि राजनीतिके अनुसार योग्यता प्रकट है, और अब विवाहको हुए बहुत काल बीत गया।

(ख) '***सब लायक***' अर्थात् जो गुण राजामें चाहिये और जो मुझमें हैं उनसे भी कहीं अधिक श्रेष्ठ गुण इनमें हैं। ये क्षमामें पृथ्वी, बुद्धिमें बृहस्पति, पराक्रममें इन्द्र और यम, धर्मपूर्वक दण्डकी व्यवस्थामें धर्मराज और धैर्यमें पर्वतसे भी श्रेष्ठ हैं। लोकमें ये ही एक सत्पुरुष हैं, सत्यप्रतिज्ञ, सुशील, कृतज्ञ, मधुर, सत्य और प्रियभाषी, निरहंकार, इन्द्रियजित्, समरविजयी, शरणपाल, लोकप्रिय, त्रैलोक्यकी रक्षामें समर्थ, विनम्र, राजनीति एवं समस्त विद्याओं और कलाओंमें निपुण, देव-विप्र-गुरु-सेवी, करुणामय…इत्यादि-इत्यादि हैं। यथा—'**सम्मतस्त्रिषु लोकेषु वसुधायाः क्षमागुणैः। बुद्ध्या बृहस्पतेस्तुल्यो वीर्ये चापि शचीपतेः॥**' (वाल्मी० २। १। ३२)…'**यमशक्रसमो वीर्ये बृहस्पतिसमो मतौ। महीधरसमो धृत्या मत्तश्च गुणवत्तरः॥**' (३९) इत्यादि सर्ग १ देखिये।

टिप्पणी—३—'***भए राम सब बिधि***…' इति। (क) '***भए***' से पाया गया कि विवाह हो जानेके बहुत दिनोंके पश्चात् राजाके हृदयमें युवराज्य देनेकी अभिलाषा हुई। (ख) '***सब बिधि***' अर्थात् इस वंशके योग्य, विद्या, अवस्था, पुरुषार्थ इत्यादि यावत् गुणगण जो अपेक्षित हैं उन सबोंसे युक्त। '***सब लायक***' अर्थात् राज्य और प्रजापालन करनेके योग्य अपने गुणोंसे सब प्रकार '***लायक***' (योग्य) हुए। राज्य तभी देना चाहिये जब राजकुमार सब तरहसे उसकी योग्यता प्राप्त कर ले। यथा—'***देखा बिधि बिचारि सब लायक। दच्छहि कीन्ह प्रजापति नायक***'॥' (१। ६०) अतएव '***सब लायक***' कहकर जनाया कि उनको राज्य देना चाहिये। विवाहके समय अवस्था बहुत कम थी (चौदह-पंद्रह वर्षकी थी) इसीसे तब सब लायक न थे (एक कमी थी)। अब अवस्थासे भी राज्यके '***लायक***' हो गये।—यह सब राजाने अपनी ओरसे कहा। आगे प्रजाकी ओरसे भी सब प्रकार योग्य होना कहते हैं, क्योंकि जिससे प्रजा प्रसन्न हो उसीको राजा बनाना चाहिये। श्रीरामजीसे सब प्रसन्न हैं यह आगे कहते हैं। (ख) '***सेवक सचिव सकल पुरबासी***…' इति। सेवक अपनेसे छोटे, अरि-मित्र बराबरके, विप्र अपनेसे बड़े। अर्थात् छोटे, बड़े और बराबरके सभी श्रीरामजीपर प्रेम करते हैं। '***सकल***' का अन्वय सबके साथ है। पुनः, सेवक, सचिव और पुरवासी ये सब एक कोटिके हैं। दो कोटि लिखनेका भाव कि सेवक-सचिव-पुरवासी तनके व्यवहारसे हैं और अरि, मित्र, उदासी मनके व्यवहारसे हैं, यथा—'***सत्रु मित्र मध्यस्थ तीनि ये मन कीन्हें बरिआई।***' (इति विनये) (ग) '***जे हमरे अरि***…'—श्रीरामजी अभी लड़के हैं, उनके कोई अरि, मित्र और उदासी नहीं हैं, इसीसे अपने '***अरि***' कहते हैं, रामजीके नहीं। (घ) '***सबहिं रामप्रिय***…' रामजीके कोई शत्रु नहीं हैं, उनसे तो

सभी प्रेम करते हैं। यथा—*'ये प्रिय सबहिं जहाँ लगि प्रानी।'* (१-२१६) यहाँ 'चतुर्थ तुल्ययोगिता अलङ्कार' है। शत्रुको भी प्रिय हैं, यथा—*'जासु सुभाउ अरिहि अनुकूला।'* (३२। ८) *'बैरिउ राम बड़ाई करहीं'* इत्यादि*। (घ) *'जेहि बिधि मोहीं'*—अर्थात् जैसे मुझको प्राणप्रिय हैं, वैसे ही सबको प्राण-प्रिय हैं। यथा—*'कोसलपुरबासी नर नारि बृद्ध अरु बाल। प्रानहुँ ते प्रिय लागत सब कहुँ राम कृपाल॥'* (१। २०४) पुनः भाव कि पुत्रके समान सबको प्रिय हैं, सबका वात्सल्य प्रेम है। इस कथनमें अभिप्रायसे जनाया कि इनको युवराज्य देनेसे सभी प्रसन्न होंगे। (ङ) *'प्रभु असीस जनु तनु धरि सोही।'* यह तो कहा कि सबको मेरी तरह प्रिय हैं, पर यह न कहा कि किस तरह प्रिय हैं। इसीको उत्प्रेक्षाद्वारा कहते हैं कि ऐसा जान पड़ता है मानो आपका आशीर्वाद स्वयं फलरूप होकर परमात्मा (राम) का तन धरकर मूर्तिमान् होकर सुशोभित हो रहा है। श्रीरामजीको वसिष्ठजीके आशीर्वादकी मूर्ति कहा, क्योंकि उन्हींके आशीर्वादसे ये हुए हैं। पुत्रेष्टियज्ञके पूर्व राजाको उन्होंने यह आशीर्वाद दिया था, यथा—*'धरहु धीर होइहहिं सुत चारी। त्रिभुवन बिदित भगत भयहारी॥'* पुनः भाव कि जैसे आपका आशीर्वाद सबको प्रिय है, वैसे ही श्रीरामजी सबको प्रिय हैं। (पुनः भाव कि हमारे भाग्य ऐसे कहाँ थे कि ऐसे पुत्र होते, ये तो आपके आशीर्वाद ही हैं। इस चरणमें 'अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा अलङ्कार' है।) (च) *'सोही'* का भाव कि श्रीरामजीका प्रकट होना उनके आशीर्वादकी शोभा है। शोभा यह कि मुनिके आशीर्वादसे ब्रह्म (तक) प्रकट होते हैं। पुनः भाव कि जितनी शोभा रामजीकी है, उतनी ही शोभा वसिष्ठजीके आसिषकी है, कारण कि मुनिके आसिषका तन (मूर्ति) रामजी हैं।

टिप्पणी ४ *'बिप्र सहित परिवार······'* इति। (क) शत्रु-मित्र-उदासीको अपने समान प्रिय होना कहा और विप्रोंका वसिष्ठसमान छोह करना कहा। भेदमें भाव यह है कि शत्रु-मित्र-उदासीन यह मायिक सम्बन्ध है, अतएव उन्हें अपने समान कहा। गुरु ईश्वर हैं, यथा—*'भक्ति भक्त भगवंत गुरु चतुर नाम बपु एक।'* (भक्तमाल) राजा ब्राह्मणोंको ईश्वर मानते हैं। अतएव उनको अरि-मित्र-उदासीनसे पृथक् गुरुके समान छोह करना कहा। अथवा, ब्राह्मण और गुरुका छोह सबसे अधिक कल्याणका देनेवाला है, इससे इन्हें सबसे पृथक् कहा। [सेवक, सचिव, पुरवासी, शत्रु, मित्र और उदासी छः गिनाये। गुरु और विप्रको इनसे पृथक् कहा, क्योंकि ये रामरूप ही हैं, यथा—*'मम मूरति महिदेव मई है।'* (वि०१३९) आप सब प्रेम करते हैं ऐसा कहकर रामजीकी अत्यन्त बड़ाई सूचित की, प्रत्यक्ष न कहा। (प्र० सं०) इस अर्धालीमें उपमा और उदाहरणका संदेहसङ्कर है। (वीर)] (ख) सेवकसे लेकर राजातक (शत्रु, मित्र और उदासीन जो राजा हैं) कहा। सेवकसे छोटा और राजासे बड़ा कोई नहीं है। ब्राह्मणोंसे लेकर वसिष्ठतक कहा क्योंकि वसिष्ठसे बढ़कर कोई नहीं यथा—*'बड़ बसिष्ठ सम को जगमाहीं।'* (ग) *'परिवार सहित'* कहकर छोटे-बड़े सबका छोह करना कहा।

जे गुर चरन रेनु सिर धरहीं। ते जनु सकल बिभव बस करहीं॥ ५॥
मोहि सम यहु अनुभयउ न दूजे। सब पायउँ रज पावनि पूजे॥ ६॥
अब अभिलाषु एक मन मोरे। पूजिहि नाथ अनुग्रह तोरे॥ ७॥
मुनि प्रसन्न लखि सहज सनेहू। कहेउ नरेसु रजायसु देहू॥ ८॥

शब्दार्थ—रेनु (रेणु)= धूल, रज। धरहीं=धारण करते हैं, लगाते हैं। **जनु**=जन, प्राणी, लोग। **जनु**=मानो। **बिभव**=ऐश्वर्य, सम्पत्ति, शक्ति। **अनुभयउ**=अनुभव किया। **पूजिहि**=पूर्ण होगी। **दूजे**=दूसरेने। **पूजे**=पूजने या सेवन करनेसे। **अनुग्रह**=(अनु=साथ+ग्रह=लेना) कृपा। **सहज**=स्वाभाविक, बनावटी नहीं, पैदाइशी। **रजायसु** [**राजा+आयसु**=राजाज्ञा। यहाँ 'देहू' शब्द आगे होनेसे यही व्युत्पत्ति ठीक जान पड़ती है]=आज्ञा।

* प्र० सं०-राक्षस शत्रु हैं। इन्द्रादि सब देवता मित्र हैं। सन्त उदासीन हैं। श्रीरामजीकी उदारता और कृपालुता आदिकी प्रशंसा शत्रुओंमें भी है। उन्होंने घोर पापिनी ताड़काको निज पद दिया।

अर्थ—जो लोग गुरु-पद-रजको मस्तकपर धारण करते हैं वे मानो सभी ऐश्वर्योंको (अपने) वशमें कर लेते हैं॥ ५॥ इसका अनुभव मेरे समान किसी औरने नहीं किया। (जो कुछ भी मैंने पाया है यह) सब मैंने आपकी पवित्र चरण-रजके पूजनसे ही पाया है॥ ६॥ अब मेरे मनमें एक ही अभिलाषा और है सो भी, हे नाथ! आपकी ही कृपासे पूरी होगी॥ ७॥ राजाका सहज स्नेह देख मुनि प्रसन्न होकर बोले कि हे नरेश! आज्ञा दीजिये। अर्थात् कहिये, क्या अभिलाषा है?॥ ८॥

नोट—१ पूर्व कहा कि महिसुर ईश्वरके रूप हैं; सो भी रामपर आपकी तरह छोह करते हैं। इस महत् बड़ाईका क्या कारण है, यह अब कहते हैं।

टिप्पणी—१ '*जे गुर चरन रेनु*···' इति। (क) '*जे*'=जो कोई भी। यहाँ साधारणतया सभीके लिये कहते हैं। '*जे*' यह दूसरोंके लिये कहा। (ख) '*रेनु सिर धरहीं*···'—(श्रीगुरुपदरजवन्दनाप्रसङ्गमें रजसेवनकी अनेक विधियाँ बतायी हैं जैसे कि तिलक करना आदि। शिरोधार्य करना, मस्तकमें लगाना आदर है, यथा—'*सिर धरि आयसु करिय तुम्हारा।*') '*सकल बिभव बस करहीं*'—इससे जनाया कि रजमें सम्पूर्ण विभव बसते हैं, उसमें वशीकरणशक्ति है, यथा—'*किये तिलक गुनगन बस करनी।*' (१। १। ४) '*सकल बिभव*' कहनेका भाव कि अन्य सब साधन एक ओर और केवल यह साधन एक ओर अन्य सब साधन मिलकर भी इसकी (रजसेवनकी) बराबरी नहीं कर सकते। '*बस करहीं*' का भाव कि अन्य धर्मोंके करनेसे विभव प्राप्त होता है पर गुरुपदरज शिरोधार्य करनेसे समस्त विभव वशमें हो जाते हैं। भाव कि ऐश्वर्य तो अन्य साधनोंसे भी प्राप्त हो जाता है पर वह नष्ट हो जाता है और गुरुचरणरजसे जो ऐश्वर्य प्राप्त होता है वह अक्षय है। (प्र० सं०) (ग) ☞ यहाँ वैभव-कथनका प्रकरण है (विभवका प्रयोजन है) इसीसे यहाँ 'विभव' का वश करना कहा गया। बालकाण्डमें कविताका प्रकरण है इससे वहाँ '*किये तिलक गुनगन बस करनी।*' (१। १। ४) कहा था। अर्थात् वहाँ कहा कि रजको मस्तकपर लगानेसे कविताके गुणगण वशमें होते हैं, क्योंकि वहाँ इन्हींकी आवश्यकता थी।

टिप्पणी २—'*मोहि सम यहु अनुभयउ न दूजे।*···' इति। (क) अब अपने विषयमें कहते हैं। (अपनेहीको प्रमाणमें देते हैं) कि गुरुचरण-रजको शिरोधार्य करनेसे सकल विभव वशमें होते हैं इस बातको मैंने अच्छी तरह समझा है, इसीसे मुझे सबसे अधिक वैभव प्राप्त है। (जैसा अनुभव मुझे हुआ वैसा किसी दूसरेको नहीं। इस कथनमें 'आत्मतुष्टि प्रमाण अलङ्कार' है।) यही बात राजा आगे कहते हैं—'*सब पायउँ*···', और कविने भी पूर्व कहा है कि '*तिभुवन तीनि काल जग माहीं। भूरि भाग दसरथ सम नाहीं॥*' (ख) यहाँ राजाने रजके सम्बन्धसे अपनी बड़ाई की। इसी प्रकार सब अपनी बड़ाई करते हैं। यथा—'*होहिं सहसदस सारद सेषा। करहिं कलप कोटिक भरि लेखा॥ मोर भाग राउर गुनगाथा। कहि न सिराहिं सुनहु रघुनाथा॥*' (१। ३४२) (इति जनक) पुनः यथा—'*हम सब सेवक अति बड़भागी। संतत सगुन ब्रह्म अनुरागी॥*' (४। १६) (इति जाम्बवान्) (ग) '*सब पायउँ*' अर्थात् इस लोकमें समस्त पृथ्वीका राज्य, (परमोत्तम देवदुर्लभ ऐश्वर्य), श्रीराम-ऐसे पुत्र (और उनके अनुरूप बहुएँ, उत्तम समधियाना इत्यादि) सभी कुछ प्राप्त हो गया। भाव कि आपकी रजका प्रभाव भारी है, इसीसे मैंने सबसे अधिक वैभव पाया। रज '*सकल बिभव बस करनी*' है अतः '*सब पायउँ*' [गुप्त रीतिसे यह भी जनाया कि आप-सरीखा गुरु भी नहीं और न मुझ-सरीखा कृपापात्र गुरुभक्त। (प्र०सं०)] (घ) '*रज पावनि*'—पावनी विशेषण देकर रजकी बड़ाई की। पावनी है अतएव उसने मुझे पवित्र कर दिया और विभवसे पूर्ण है, अतएव उसने सब वैभव दिया।

टिप्पणी—३ '*अब अभिलाषु एकु*···' इति। (क) '*अब*'—अर्थात् यह अभिलाषा पूर्व न उठी थी, जरठपनके उपदेशसे अब हुई है। (ख) '*अभिलाषु एकु*'—अर्थात् पूर्व बहुत-सी अभिलाषाएँ हुई थीं वे सब पूरी हो गयीं, अब केवल यही एक रह गयी है। इसीके लिये कष्ट देने आया हूँ। ['*एकु*' से मनोरथकी प्रधानता जना दी। इससे बढ़कर और कोई अभिलाषा नहीं है। देखिए, इसी अभिलाषाके करनेसे सारे संसारका

काम हुआ। (दीनजी) यह अन्तिम अभिलाषा है। जीवनमें अब दूसरी अभिलाषा नहीं होनेकी।] (ग) *'मोरे' 'तोरे'*—यहाँ राजाकी दीनता दर्शित करनेके लिये *'मोरे'* शब्द दिया और उसके अनुप्रासके लिये *'तोरे'* कहा, नहीं तो जब-जब राजाने गुरुसे प्रार्थना की तब कभी *'तोरे'* नहीं कहा। [(घ) *'पूजिहि'* शब्दसे गुरुके अनुग्रहमें अपना दृढ़ विश्वास दिखाया।] (ङ) राजाने 'अभिलाषा' शब्द मात्र सुनाया, खोलकर न कहा कि क्या अभिलाषा है। कारण कि वे गुरुजीका रुख देख रहे हैं। गुरुकी आज्ञा हो तब सुनावें। (प्रसन्न हों तब कहा जाय नहीं तो नहीं, यह भाव *'सब बिधि गुरु प्रसन्न जिय जानी। ......'* से सिद्ध होता है।)

नोट—१ ☞ वाल्मी० २। ४ में श्रीदशरथजी महाराजने जो श्रीरामजीसे कहा है कि 'मैं वृद्ध हो गया, मैंने बड़ी दीर्घायु पायी, मनमाने भोग भोगे हैं। अन्न प्रचुर तथा पूरी दक्षिणवाले सैकड़ों यज्ञ किये हैं, दान किये हैं, अध्ययन किया है। समस्त वाञ्छित सुख पाये हैं। देवता, ऋषि, पितर, ब्राह्मण तथा अपनेसे भी मैं उऋण हो चुका हूँ। संसारमें जिसके समान दूसरा नहीं वैसे वाञ्छित पुत्र तुम उत्पन्न हुए—**'जातमिष्टमपत्यं मे त्वमद्यानुपमं भुवि।......'** (१३) तुम्हारे अभिषेकको छोड़कर मुझे अब और कुछ भी बाकी नहीं है। यथा—**'न किञ्चिन्मम कर्तव्यं तवान्यत्राभिषेचनात्।'** (श्लोक १२—१५)।—ये सब भाव *'सब पायउँ,' 'अब अभिलाषु एकु मन मोरे'* और आगेके *'यह लालसा एक मन माहीं।'* (४। ४) से सूचित कर दिये गये। यहाँ ये वचन गुरुसे कहे जानेसे कितने भक्तिभावगर्भित और गौरवके हो गये हैं।

टिप्पणी—४ *'मुनि प्रसन्न लखि सहज सनेहू।......'* इति। (क) *'लखि'*—प्रेम देखकर प्रसन्न हुए (यह कैसे लखा?) इस तरह कि राजाके तन, मन, वचन तीनोंमें प्रेम देख पड़ा। यथा—*'प्रेम पुलकि तन मुदित मन गुरहि सुनायउ जाइ।'* (२) प्रेमसे तन पुलकित है, मन आनन्दमोदसे भरा है, मग्न हैं, प्रेमरसमय वचन कहे हैं।

(ख) *'सहज सनेहू।'* देखकर सभी प्रसन्न होते हैं, यथा—*'सहज सनेह बिबस रघुराई।'* (ग) *'कहेउ नरेस रजायसु देहू'*—अर्थात् राजन्! जो कहिये वह हम करें। नरेश हैं, इसीसे आज्ञा देना कहा। राजाकी आज्ञा रजायसु कहलाती है।

नोट—२ *'रजायसु देहू'* इति। श्रीकरुणासिन्धुजी और पं० रामकुमारजीने 'राजाज्ञा' 'आज्ञा' अर्थ किया है। गीताप्रेसने भी इसीको ग्रहण किया है। प्रायः अन्य टीकाकार महानुभावोंने *'नरेस'* को *'कहेउ'* का कर्ता माना है। पंजाबीजी लिखते हैं कि *'अब अभिलाषु एकु......'* यहाँतक राजाके विनम्र वचनोंको सुनकर मुनि प्रसन्न हुए। मुनिकी प्रसन्नता और उनका अपने ऊपर प्रेम लखकर (चेष्टासे) राजाने कहा कि आज्ञा हो तो मैं मनोरथ निवेदन करूँ। बाबा हरिहरप्रसादजीने दोनों भावोंको दिया है पर मुख्य इसीको रखा है।

'गुरुका राजासे कहना कि क्या आज्ञा है, अनुचित जान पड़ता है', यह शङ्का *'कहेउ'* को *'मुनि'* की क्रिया माननेमें की जाती है। पर इसका समाधान बाबा रामप्रतापदासजी (बेंदीवाले) यों करते हैं कि चक्रवर्तीका भाव रखनेके विचारसे रजायसु पद दिया गया है। ऐसा क्यों न कहें? वे तो इनका महत्त्व जानते ही हैं कि साक्षात् ब्रह्म इनके पुत्र हुए।

दीनजी पं० रामकुमारजीके मतका समर्थन करते हुए कहते हैं कि *'रजायसु'* शब्द यह बात प्रकट करता है कि बात राजाको कहनी चाहिये। मुनिकी आज्ञाको रजायसु नहीं कह सकते। *'नरेसु'* शब्द सम्बोधनमें लिया जायगा। *'मुनि कहेउ*—हे नरेसु! रजायसु देहु'। यह उसका अन्वय है। इसी वास्ते *'नरेसु'* शब्द रखा है कि नर तो वसिष्ठजी भी हैं, वे नरकी हैसियतसे राजा दशरथको राजा मानकर आज्ञा माँगते हैं कि हमारे योग्य जो कार्य हो उसकी आज्ञा दीजिए, हम करें।

दो०—राजन राउर नाम जसु सब अभिमत दातार।
फल अनुगामी महिपमनि मन अभिलाष तुम्हार॥ ३॥

शब्दार्थ—**राजन**=(सम्बोधन) हे राजा। **राउर**=(रावरो) आपका। **अभिमत**=मनचाही वस्तु, इष्ट, वाञ्छित। **दातार**=देनेवाला। **अनुगामी**=पीछे-पीछे चलनेवाला।

अर्थ—हे राजन्! आपका नाम और यश ही सब (वा, सब-के-सभी) मनोरथोंको देनेवाला है। हे महीपमणि! आपके मनकी अभिलाषा (तो) फलकी अनुगामिनी है॥ ३॥ (दीनजी, गौड़जी)

नोट—१ उत्तरार्द्धके अर्थ और तरहसे भी किये गये हैं—(२) पं० रामकुमारजीका अर्थ टिप्पणी १ में देखिये। (३) मा० म० और रा० प्र० का अर्थ—'आपके मनकी अभिलाषा महिपमणि अर्थात् चक्रवर्ती राजा है, फल उसका अनुचर है। सेवक स्वामीके पीछे चलता है अतः '**अभिलाष**' को राजा और फलको अनुगामी कहा है।' (४) श्रीनंगेपरमहंसजीका अर्थ—'आपकी अभिलाषाका फल आपका अनुगामी है।' (भाव कि) 'तब आपके मनकी अभिलाषा कैसे बाकी रहेगी। अर्थात् आपकी (मनुशरीरमें) अभिलाषा हुई कि परम प्रभुका दर्शन हो (तब आपको उन्होंने दर्शन दे दिया और) जब आपने उनको देखा तब (आपने कहा कि) *'चाहौं तुम्हहि समान सुत।'* (वे आपके पुत्र हुए अतः) जब आपकी अभिलाषाका फल श्रीरामजी हैं जो सब अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाले हैं और (जब) वे ही आपके अनुगामी हुए हैं तब मनकी अभिलाषा कैसे बाकी रहेगी। यदि कहिये कि राज्याभिषेककी अभिलाषा क्यों नहीं पूरी हुई तो समाधान यह है कि क्रमशः पूरी होगी। पहले राजाके वरदानको पूरा करके यह अभिलाषा पूरी करेंगे।' (अभिलाषा है *'मोहि अछत यहु होइ उछाहू।'* कोष्टक सम्पादकीय है।)

नोट—२ *'फल अनुगामी महिपमनि मन अभिलाषु तुम्हार'* इति। इसके प्रथम अर्थसे प्रोफे० दीनजी और गौड़जी दोनों सहमत हैं। इसका भाव यह है कि आप जो अभिलाषा करते हैं उसका फल पहले ही उत्पन्न हो जाता है, अभिलाषा पीछेसे होती है। दीनजी कहते हैं कि यहाँ 'अत्यन्तातिशयोक्ति अलङ्कार' है *('जहाँ हेतु तें प्रथमही प्रगट होत है काज')*। अनुगामी *'अभिलाषु'* का विशेषण है। जिन-जिन टीकाकारोंने उक्त 'अत्यन्तातिशयोक्ति' के बिना समझे इस दोहेका अर्थ किया है वे चूक गये हैं। गी० प्रे० ने भी यही अर्थ ग्रहण किया है।

गौड़जी—एक सीधा अन्वय इस दोहेके उत्तरार्द्धका यह भी होता है—'हे महिपमणि! तुम्हार मन कै अभिलाष फल अनुगामी अहई' अर्थात् हे राजन्! तुम्हारे मनमें अभिलाषा उठनेवाली होती है कि फल तुरंत प्राप्त हो जाता है, कारणके उपस्थित होनेके पहले ही कार्य हो जाता है क्योंकि आपका नाम और यश सभी अभीष्टोंके देनेवाले पहलेहीसे सर्वत्र फैले हुए हैं और तुम्हारे मनमें अभिलाषा तो पीछे होती है। इस चमत्कारका भाव यह है कि जब अन्धतापसने यह शाप दिया कि तुम भी पुत्रवियोगमें प्राण त्याग करोगे तो इस शापको राजा दशरथने आशीर्वाद माना; क्योंकि तबतक कोई सन्तान न थी। यह अभिलाषा हुई कि पुत्र होगा तो उसके वियोगमें प्राण-त्याग करनेकी नौबत आवेगी। [सन्तानकी अभिलाषा और सन्तान हुई साठ हजार वर्षकी आयु होनेपर, अन्धतापसशाप हुआ था युवावस्थामें जब शब्दवेधी बाण चलाने और 'राजकुमार शब्दवेधी हैं' यह प्रसिद्धि पानेका शौक था। (वाल्मी० २। ६३। ११)] *'मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना। मम जीवन तिमि तुम्हहिं अधीना॥'* यह सारस्वत वाक्य वरदानके रूपमें अवधभुआलको फलस्वरूप अन्धशापके पहले ही प्राप्त हो चुका था।

नोट—३ यहाँ कुछ महानुभावोंने यह शङ्का उठाकर कि 'वसिष्ठजीका यह वचन तो सत्य नहीं ही हुआ; क्योंकि राजाका मनोरथ छूछा पड़ा' इस दोहेका सरस्वतीकृत अर्थ भी कहा है जो यह है—(क) आपकी अभिलाषाका फल रामचन्द्रजीको राज्यप्राप्ति है सो 'अनु' अर्थात् पीछे होगा, राज्य अभी न होगा। इस अभिलाषा-वश आपका नाम और यश सब अभिमतोंका देनेवाला होगा। (मा०म०) (ख) आपका नाम और यश सबकी इच्छा पूर्ण करता है तो रामचन्द्रकी इच्छा भी पूरी करेगा कि प्रथम रावणवध कर दिग्विजय प्राप्त कर लें, तब राज्य करें। (मा० म०) (ग) *'राजन'* (राज न) अर्थात् तुम्हारा राज्य न रहेगा और तुम भी न रहोगे कि जिनका नाम और यश सबके अभिमतका देनेवाला है। (रा०प्र०) (घ) *'राजन'* 'राज्य नहीं' अर्थात् न राम-राज्याभिषेक अभी होगा और न आपका ही राज्य रहेगा। हाँ, आपका नाम और यश रह जायगा जो सब मनोरथोंका दाता होगा। आपकी इच्छा हुई इसका फल पीछे होगा, आपके मरनेपर,

आपके अक्षत नहीं। (ङ) अ० दी० कार कहते हैं कि 'फल पीछे होगा। क्योंकि केकयराजसे प्रतिज्ञाबद्ध होनेसे आपको भरतको राज्य देना उचित था, वे न लेते तब इनको देते। भरतकी अनुपस्थितिमें अभिषेक कर रहे हैं इससे यह अभी न होगा।' मुनि त्रिकालज्ञ हैं अतः ऐसे शब्द कहे।

टिप्पणी—१ *'फल अनुगामी'''* इति। (क) फल आपके मनकी अभिलाषाके अनुगामी हैं। अर्थात् मनमें अभिलाषा होते ही चारों फल प्राप्त हैं। अभिलाषाके पीछे (पीछे) फल लगे रहते हैं। राजाने कहा था कि *'अब अभिलाषु एकु मन मोरें'*, इसीके उत्तरमें गुरुजीने यह कहा कि *'फल अनुगामी''''''।'* अर्थात् जब तुम्हारा नाम और यश ही सबकी अभिलाषाओंको पूर्ण करते हैं तब तुम्हारे अभिलाषाकी बात ही क्या, उसके तो चारों फल अनुगामी हैं। यहाँ राजाके नाम, यश और रूप तीनोंका माहात्म्य कहा। यह दोहा मुनिकी उक्ति है।

बाबा रघुनाथदासजी—तात्पर्य यह है कि तुम्हारे सब फल मनके अधीन हैं। और लोगोंकी अभिलाषा फलोंके पीछे दौड़ती फिरती है तो भी फल उनके हाथ लगे न लगे। और आपकी तो अभिलाषा करनेकी देर है फल तो आप ही दौड़ा चला आता है। भाव यह है कि आप बड़े सुकृती हैं। महत्पुरुषों, धर्मात्माओंके विचार जो उठते हैं, वे सिद्ध होते ही हैं, यह साधारण रीति है। (मा० दी०, वि० टी०)

पंजाबीजी—(क) भाव यह है कि जिसपर आपकी कृपादृष्टि हो जाय, उसे चारों फल प्राप्त हो जायँ फिर भला आपकी क्या बात है। (ख)—गुरुने इन वचनोंमें नीतिका पालन किया कि राजाकी प्रशंसा की। राजाकी प्रशंसा करके तब बात कहे, यह राजनीति है। परंतु राजाने इसे गुरु-अनुग्रह समझा और यह जाना कि हमारे 'वाञ्छित-सिद्धि-हेतु' हमें मनोरथके कहनेका यह सुअवसर जना रहे हैं।

सब बिधि गुरु प्रसन्न जिय जानी। बोलेउ राउ रहसि मृदु बानी॥ १॥
नाथ रामु करिअहिं जुवराजू। कहिअ कृपा करि करिअ समाजू॥ २॥
मोहि अछत यह होइ उछाहू। लहहिं लोग सब लोचन लाहू॥ ३॥

शब्दार्थ—**रहसि**=हरसि=हर्षित होकर। (विशेष नोट २ में देखिये)। **जिय जानी**= हृदयमें जानकर, समझकर (अर्थात् मनमें यह निश्चय कर लिया कि प्रसन्न हैं।) **करिअहिं**=(अवश्य) कीजिये। **समाजू**=साज-सामान, सामग्री, तैयारी। **लहहिं**=प्राप्त करें, पावें। **उछाह**=उत्सव।

अर्थ—अपने जीमें गुरुजीको सब प्रकार प्रसन्न समझकर राजा हर्षित होकर कोमल वाणीसे बोले॥ १॥ हे स्वामिन्! रामको युवराज बनाइये। कृपा करके कहिये (आज्ञा दीजिये) कि तैयारी करो॥ २॥ मेरे जीते-जी यह उत्सव हो जाय (जिससे) सब लोग नेत्रोंका लाभ उठावें॥ ३॥

नोट—१ गोस्वामीजीके समयमें क्रियाओंमें 'य' की ठौर 'अ', खासकर अन्तमें लिखनेकी प्रणाली थी। ऐसा जान पड़ता है। ग्रन्थमें—*'करिय'* का *'करिअ'*, *'करियहिं'* का *'करिअहिं'* रूप मिलता है।

टिप्पणी—१ *'सब बिधि गुरु प्रसन्न'''* इति। (क) सब प्रकार अर्थात् मन, कर्म, वचन तीनोंसे राजाका स्नेह देखकर गुरु प्रसन्न हुए, *'मुनि प्रसन्न लखि सहज सनेहू'* यह मनकी प्रसन्नता है। अभिलाषाको पूर्ण करनेपर उद्यत हैं, उसे पूछ रहे हैं। यथा—*'कहेउ नरेसु रजायसु देहू'*, यह कर्मसे प्रसन्नता दरसाई और राजाकी प्रशंसा की, यथा *'राजन राउर नाम जसु सब अभिमत दातार'''*, यह वचनकी प्रसन्नता है। (ख) *'जिय जानी'*—अर्थात् अच्छी तरह हृदयमें समझ लिया कि गुरुजी प्रसन्न हैं तब अभिलाषा सुनायी, जिसमें गुरुजी युवराज्य देनेकी आज्ञा दे दें, मनोरथ सफल हो। (ग) *'रहसि मृदुबानी'*—मृदु वाणी हर्षित होकर बोले। क्योंकि रामराज्य हर्षका हेतु है। रामराज्यकी बात हृदयमें आते ही हर्ष हुआ। वाणी तो स्वाभाविक ही कोमल है अथवा, उसे और भी कोमल करके बोले जिसमें गुरुको अच्छी लगे, वे प्रसन्न हों।

नोट—२ *'रहसि'* इति। संस्कृत भाषामें दो शब्द मिलते हैं—रहस् और रभस्। रहस् शब्दका अर्थ है—आनन्द, सुख, क्रीड़ा, गुप्त भेद, एकान्त स्थान। 'रहसना' हिन्दी भाषामें अकर्मक क्रिया बनाया गया,

जिसका अर्थ है—आनन्दित होना, प्रसन्न होना। यथा—*'एहि बिधि रहसत बिलसत दंपति हेतु हिय नहिं थोरे'*—(सूर) *'बर दुलहिनन्हि बिलोकि सकल मन रहसहिं'*—(तुलसी)। पुनः, रहसि=गुप्त स्थान, एकान्त स्थान। यथा—*'सुनि बल मोहन बैठ रहसिमें कीन्हों कछू बिचार'* (सूरशब्दसागर)।

शब्दकल्पद्रुममें 'रभस्' का अर्थ वेग, हर्ष और प्रेमोत्साह है और 'रहस्' का अर्थ केवल 'एकान्त' और 'रति' दिया हुआ है। गौड़जीकी राय है कि जहाँ 'रहसि' शब्दका अर्थ है—प्रेमोत्साहसे, हर्षसे, वहाँ उसका मूल रूप संस्कृतमें 'रभसः' है और जहाँ एकान्तके अर्थमें आया है वहाँ मूलरूप 'रहस्' ही है।

पं० रामकुमारजी कहते हैं कि 'हरषि' को उलटकर अर्थात् वर्णविपर्ययद्वारा 'रहसि शब्द बना है। इसका अर्थ भी 'हर्षपूर्वक' 'हर्षित होकर' है। यहाँ वर्णविपर्ययद्वारा बने हुए शब्दका प्रयोग सहेतुक है। इस काण्डमें यह शब्द इस रूपमें कई स्थलोंमें प्रयुक्त किया गया है और जहाँ-जहाँ इसका प्रयोग हुआ है, प्रायः उन सब स्थलोंपर परिणाम हर्षका उलटा ही हुआ है, मनोरथ ही छूछा पड़ा, उसकी सिद्धि नहीं ही हुई, यथा—*'एहि अवसर मंगल परम सुनि रहसेउ रनिवास।'* (२। ७), *'रहसी चेरि घात जनु फाबी।'* (१७। २), *'रहसी रानि राम रुख पाई।'* (४३। १) इत्यादि।

दीनजी, हरिहरप्रसादजी इत्यादि भी 'हरषि' का वर्ण-विपर्ययसे 'रहसि' होना लिखते हैं। विनायकी टीकाकारने यहाँ पाठ ही बदल दिया है—*'बिहँसि'* पाठ दिया है। पर यह पाठ अशुद्ध है।

टिप्पणी—२ *'नाथ राम करिअहि जुवराजू।'''''* इति। (क) *'नाथ'* का भाव कि आप स्वामी हैं, मैं तो सेवक हूँ, आपके ही देनेसे उनको युवराज्य मिलेगा और मेरा काम तो आपकी आज्ञाका पालन करना है। कृपा करके आप मुझे आज्ञा दें तब मैं करूँ। अतः, कहा कि *'कहिअ कृपा करि करिय समाजू।' 'कृपा करि'* क्योंकि जो कार्य सिद्ध हुए हैं वे आपकी कृपासे ही, रही सही यह भी आपकी कृपासे ही पूरी होगी। यथा—*'पूजिहि नाथ अनुग्रह तोरे।'* [*'करिअ समाजू'*—प्रसङ्गानुकूल यहाँ 'समाज' का अर्थ है—सामग्री, सामान, न कि पुरुषोंका समाज। यथा—*'कहेहु लेहु सब तिलक समाजू। बनहिं देब मुनि रामहिं राजू॥'* (१८७। ३) *'साजिअ सबुइ समाजु।'* (२। ४) यह गुरुमहाराजने स्वयं ही कहा है]।

टिप्पणी—३ *'मोहि अछत यह होइ'''''* इति। (क) पूर्व जो कहा था कि मेरे मनमें एक अभिलाषा है उसे यहाँ स्पष्ट करके कहते हैं—*'मोहि अछत'* से *'न होइ पाछे पछिताऊ'* तक। (ख) *'मोहि अछत'* मेरे रहते यह उछाह हो। भाव कि वृद्धा अवस्था है, जीवनका ठिकाना नहीं, शरीरके रहनेमें सन्देह है। यही बात आगे स्पष्ट कहते हैं, यथा—*'पुनि न सोच तन रहउ कि जाऊ। जेहि न होइ पाछे पछिताऊ॥'* राज्य देनेवाले गुरुजी हैं, राजा नहीं। (*'यह होइ'* इन वचनोंसे *'नाथ रामु करिअहि जुवराजू'* का अर्थ स्पष्ट हुआ। अर्थात् इससे गुरुका राज्य देना पुष्ट करते हैं) नहीं तो कहते कि जीते-जी मैं उन्हें युवराज बना दूँ, यह उत्सव कर लूँ। यह उत्सव हो जाय, नेत्रभर इसे भी मैं देख लूँ, (अर्थात् अपनी बेबसी) न कहते। (यही बात वाल्मीकीयमें राजाके, **'सोऽहं विश्राममिच्छामि पुत्रं कृत्वा प्रजाहिते। संनिकृष्टानिमान्सर्वाननुमान्य द्विजर्षभान्॥'** (२। २। १०) अर्थात् प्रजाके कल्याणके लिये मैं अपने पुत्रको अपने स्थानपर नियुक्त कर विश्राम चाहता हूँ, पर यह मैं तब चाहता हूँ जब समीप बैठे हुए आप सब सभासद् और हमारे अन्तरङ्ग सब श्रेष्ठ ब्राह्मण आज्ञा दें, इन वाक्योंसे सिद्ध होती है। जनपदका कैसा मान था!) [(ग) इस चौपाईसे ग्रन्थकारने पूर्वकथित पुरवासियोंकी अभिलाषाका सम्बन्ध मिलाया। *'सबके उर अभिलाषु अस''''''आपु अछत जुवराज पद रामहिं देउ नरेसु।'* यह पुरवासियोंकी अभिलाषा कही थी। उसकी सिद्धि यहाँ *'मोहि अछत यह होइ उछाहू। लहहिं लोग सब लोचन लाहू॥'* इस अर्धालीमें दिखायी। *'लोग सब'* में गुरुजी भी आ गये।]

नोट—३—वाल्मीकिजी लिखते हैं कि 'राजाको इस समय बहुत अशकुन और बुरे स्वप्न हो रहे थे; अतएव वे शीघ्रता कर रहे हैं, यथा—**'दिव्यन्तरिक्षे भूमौ च घोरमुत्पातजं भयम्। संचचक्षेऽथ मेधावी शरीरे**

चात्मनो जराम्॥' (२। १। ४३) अर्थात् स्वर्ग, अन्तरिक्ष और पृथ्वीमें भयङ्कर उत्पात, भय तथा अपने शरीरमें वृद्धावस्थाका आगमन बुद्धिमान् राजाने मन्त्रियोंको बतलाया। पुनश्च तथा—'**अपि चाद्याशुभान्राम स्वप्नान्पश्यामि राघव। सनिर्घाता दिवोल्काश्च पतन्ति हि महास्वनाः॥**' (२। ४। १७) अर्थात् राम! मैं आज अशुभ स्वप्न देख रहा हूँ। वज्रपातके साथ बड़े शब्दसे आकाशसे उल्कापात होते मैंने देखा है। पुनः वे रामजीसे कहते हैं—'**अवष्टब्धं च मे राम नक्षत्रं दारुणग्रहैः। आवेदयन्ति दैवज्ञाः सूर्याङ्गारकराहुभिः॥ प्रायेण च निमित्तानामीदृशानां समुद्भवे। राजा हि मृत्युमाप्नोति घोरां चापदमृच्छति॥** (४। १८-१९) अर्थात् मेरा जन्म-नक्षत्र सूर्य, मंगल और राहु इन दारुण ग्रहोंसे आक्रान्त हुआ है, ज्योतिषियोंने यह बताया है। प्राय: ऐसे निमित्तोंके उत्पन्न होनेपर या तो राजाकी मृत्यु होती है या और कोई बड़ी विपत्ति आती है। इससे यह सम्भव है कि राजाने इसी कारण विचार आते ही तुरंत दूसरे ही दिन तिलकका हो जाना निश्चित किया; यह बात उनके '**तद्यावदेव मे चेतो न विमुह्यति राघव। तावदेवाभिषिञ्चस्व चला हि प्राणिनां मतिः॥**' (२। ४। २०) (अर्थात् जबतक मेरा चित्त तुम्हारे राज्याभिषेकके सम्बन्धमें स्थिर बना रहे, मेरे होश-हवाश ठिकाने रहें तबतक तुम अपना अभिषेक करा लो, क्योंकि मनुष्योंकी बुद्धि चञ्चल हुआ करती है।) इन वाक्योंसे भी सिद्ध होती है। वे डर रहे हैं कि कहीं मेरा शरीर छूट न जाय जो यह लालसा मनके मनमें रह जाय, यह उत्सव मैं न देख सकूँ।

नोट—४—राजा जानते हैं कि सबके हृदयमें यह लालसा है, अत: कहते हैं कि '***लहहिं लोग सब*''''''।' नेत्रभर सब इस उत्सवको देख लें, नेत्र सफल कर लें। भाव कि युवराज्यपदपर श्रीरामजीको देख लेनेसे बढ़कर लाभ नहीं है।

प्रभु प्रसाद सिव सबुइ निबाहीं। यह लालसा एक मन माहीं॥ ४॥
पुनि न सोच तनु रहउ कि जाऊ। जेहि न होइ पाछे पछिताऊ॥ ५॥

शब्दार्थ—**निबाहीं**=निर्वाह किया, पूरी कर दी। **प्रसाद**=प्रसन्नता, कृपा। **लालसा** (लस=चाहना)=उत्कृष्ट इच्छा, अभिलाषा। **तनु**=शरीर, देह। **रहउ**=रहे। **पछिताऊ**=पछितावा, पश्चात्ताप।

अर्थ—आपकी कृपासे शिवजीने (पुनः, आपके प्रसाद और शिवजीने—दीनजी) सभी कुछ निबाह दिया, मात्र यही एक लालसा मनमें रह गयी है॥ ४॥ फिर मुझे सोच नहीं, शरीर रहे चाहे जाय, जिससे मुझे पीछे पछतावा न हो॥ ५॥

टिप्पणी—१ (क) '*प्रभु प्रसाद*'—क्योंकि बिना गुरुकी कृपाके ईश्वरकी प्रसन्नता नहीं होती। यथा—'***मुनि प्रसाद बलि तात तुम्हारी। ईस अनेक करवरें टारी॥***' (१। ३५७) अत: '**प्रभु प्रसाद**' कहकर 'सिव' का निबाहना कहा। (ख) '*यह लालसा एक मन माहीं*'— सब लालसाएँ पूरी हुई, यह लालसा अभी मनमें है, सो भी पूर्ण होगी। पूर्व कह चुके हैं कि '***पूजिहि नाथ अनुग्रह तोरे***', अत: यहाँ दुबारा न कहा कि आपकी कृपासे पूरी होगी, पूर्वार्द्धसे ही जना दिया। '***एक***' अर्थात् इससे बढ़कर दूसरी नहीं और बस यही एक रह गयी है।

टिप्पणी २—'*पुनि न सोच तनु रहउ*''''' ' इति। (क) अर्थात् 'तिलक हो जाय तो मुझे इस शरीरका फल मिल चुका। फिर वह रहे चाहे जाय। बिना रामराज्य हुए पीछे पछतावा ही रह जायगा।' रामराज्याभिषेक न होनेसे राजाको पछतावा हुआ ही, यथा—'***तोर कलंक मोर पछिताऊ। मुयेहु न मिटिहि न जाइहि काऊ॥***' (३६। ५) (ख) यहाँ '***सोच***' और '***पछिताऊ***' दो बातें कहीं और '***तनु रहउ कि जाऊ***' कहते हैं [अर्थात् यहाँ चार बातें कहीं—तन रहे, तन जाय, सोच और पछतावा। (प्र०सं०) इसका भाव यह है कि श्रीरामजीको युवराज्य देनेपर यदि 'तन' (मेरा शरीर) बना (भी) रहे तो शोच न रहेगा और यदि तन छूट गया तो पीछे पछतावा भी नहीं होगा। (ग) सरस्वती इन शब्दोंसे राजाका होनहार 'न रहना, मृत्यु' सूचित कर रही है।

नोट—गीतावलीमें भी राजाके वचन इसी प्रकारके हैं, यथा—'***तुम्हरी कृपा असीस नाथ मेरी सबै महेस***

निबाही। राम होहिं जुवराज जियत मेरे यह लालच मनमाहीं। बहुरि मोहि जियबे मरिबे की चित चिंता कछु नाहीं॥' (२। १)।

सुनि मुनि दसरथ बचन सुहाये। मंगल मोद मूल मन भाये॥ ६॥
सुनु नृप जासु बिमुख पछिताहीं। जासु भजन बिनु जरनि न जाहीं॥ ७॥
भयउ तुम्हार तनय सोइ स्वामी। रामु पुनीत प्रेम अनुगामी॥ ८॥
दो०—बेगि बिलंबु न करिअ नृप साजिअ सबुइ समाजु।
सुदिन सुमंगल तबहिं जब रामु होहिं जुवराजु॥ ४॥

शब्दार्थ—**भाये**=अच्छे लगे। **बिमुख**=विरोधी, जो उनसे मुँह फेरे हो, प्रेम न रखता हो। **भजन**=सेवा, भक्ति। **जरनि**=जलन। **तनय**=पुत्र। **बेगि**=शीघ्र ही। **साजिअ**=सजाइये, एकत्र कीजिये।

अर्थ—श्रीदशरथजीके सुन्दर मङ्गल और आनन्दके मूल वचन सुनकर मुनिके मनको अच्छे लगे। (अर्थात् मुनि प्रसन्न हुए॥ ६॥ और बोले—) हे राजन्! सुनिये जिनसे विमुख होनेसे लोग पछताते हैं और जिनके भजन बिना जीकी जलन नहीं जाती, वही स्वामी श्रीराम आपके पुत्र हुए हैं। श्रीरामचन्द्रजी पवित्र प्रेमके अनुगामी हैं॥ ७-८॥ हे राजन्! देर न कीजिये, शीघ्र ही सभी साज-सामान सजाइये। सुदिन और सुमंगल तभी है जब श्रीरामचन्द्रजी युवराज हो जायँ॥ ४॥

टिप्पणी—१ *'सुनि मुनि दसरथ बचन सुहाये…'* इति। श्रीरामराज्याभिषेक होना मङ्गल है, आनन्द है और राजाके वचनमें अभिषेककी बात है, अतएव राजाके वचन मंगल मोदके मूल हैं, इसीसे मुनिके मनमें अच्छे लगे। [अथवा, रामराज्याभिषेक सुनकर मुनिके मनमें आनन्द भर गया, अतः वचनको मङ्गल मोदका मूलक (उत्पन्न करनेवाला) कहा। वचन मृदु हैं, यथा—*'बोलेउ राउ रहसि मृदु बानी।'* अतः *'सुहाये'*। (प्र०सं०)]

टिप्पणी—२ *'सुनु नृप जासु बिमुख…'* इति। (क) यह राजाके *'पुनि न सोच तनु रहउ कि जाऊ'* का उत्तर है। (विमुख होनेसे पछताना पड़ता है) यथा—*'मन पछितैहै अवसरु बीते। दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु करम बचन अरु ही ते॥'* (विनय० ११८) (ख) *'जासु भजन बिनु जरनि न जाहीं'*—भाव कि रामभजन करनेसे ही जीकी जलन दूर होती है, यथा—*'राम नाम के जपे जाइ जियकी जरनि।'* (विनय० १८४)

टिप्पणी ३—*'भयउ तुम्हार तनय…'* इति। (क) भाव कि तुम्हारे पवित्र प्रेमसे तुम्हारे पुत्र हुए। 'प्रेम' भजन है, यथा—*'पन्नगारि सुनु प्रेम सम भजन न दूसर आन।'* (यह दोहा प्रक्षिप्त माना जाता है।) अतः भाव यह हुआ कि जिसके भजन बिना जलन नहीं जाती वह तुम्हारे भजनसे तुम्हारे पुत्र हुए। पुनीत अर्थात् कपट-छल-छिद्र-रहित क्योंकि श्रीमुखवचन है कि *'मोहि कपट छल छिद्र न भावा।'* (स्वार्थके लिये जो प्रेम किया जाता है वह पवित्र नहीं है।) पुनः भाव कि और पुत्र तो सुकृतसे होते हैं पर श्रीरामजी पवित्र प्रेमसे ही पुत्र होते हैं, सुकृतोंसे नहीं। *'सोइ स्वामी'* कहनेका भाव कि वह राम जो सबके स्वामी हैं, सबके पिता हैं, जब वे ही तुम्हारे पुत्र हुए तब तुमको पछतावा और जलन क्यों होगी। [(ख) भाव कि वे सबके तो स्वामी ही हैं पर तुम्हारे पुत्र हुए, क्योंकि वे प्रेमके अधीन हैं, यथा—*'तुम्ह रीझहु सनेह सुठि थोरें।'* (१। ३४२) और आपका सच्चा पवित्र प्रेम है इसीसे उनको आपका पुत्र होना पड़ा, यथा—*'जासु सनेह सकोच बस राम प्रगट भए आइ।'* (२। २०९) (यह भरद्वाजजीका वाक्य है) इससे जनाया कि निश्छल प्रेम ही सबसे बढ़कर भजन है। [राम पुनीत प्रेमके अनुगामी हैं जो तुम्हारे पुत्र हुए हैं। इस सामान्य वाक्यका *'जासु बिमुख…'* से समर्थन करना 'अर्थान्तरन्यास अलङ्कार' है। (वीर)]

नोट—१ *'राम पुनीत प्रेम अनुगामी'* इति। मयङ्ककार ऐसा अर्थ करते हैं कि 'जिसके भजन बिना जरनि नहीं जाती उस (भरत) के स्वामी राम तुम्हारे पुत्र हुए, जो पुनीत प्रेमके अनुगामी हैं। परंतु दशरथजीका

प्रेम पुनीत नहीं। क्योंकि राज्य देना भरतजीको उचित है। राजा भक्तशिरोमणि भरतसे विमुख हैं (रामजीके सम्मुख हैं) अत: उन्हे पछताना पड़ेगा। भरतजीहीकी विमुखता यहाँ सिद्ध होती है क्योंकि राजाको पछताना पड़ा।' रामभजनमें तो राजा तत्पर ही थे तो फिर जरनि क्यों हुई? इससे भरत-भजन ही सिद्ध अर्थ है। भरतजी रामप्रेमके पात्र हैं और रामचन्द्रजी उस प्रेमके अनुगामी हैं। राजा भरतसे विमुख हुए, अतः रामचन्द्रजी उनसे रूठ गये।

प्रोफे० दीनजी लगभग इसी भावार्थका समर्थन करते हैं। वे लिखते हैं कि 'इस चौपाईका गूढ संदर्भ यह कि तुम्हारा विचार रामभक्त भरतके विरुद्ध है। तुम्हारे पूर्व वचनोंके अनुसार भरत ही राज्यके अधिकारी हैं सो उनका हक मारकर रामको देना चाहते हो, यह अच्छा नहीं करते। रामजी तो पुनीत प्रेमके अनुगामी हैं और तुम्हारा यह प्रेम अधर्ममूलक है, अतः रामजी राज्य नहीं ग्रहण करेंगे। इन चौपाइयोंको कुछ लोग रामपक्षमें लगाते हैं, पर हमें भरतपक्षका ही अर्थ अधिक सुसङ्गत जान पड़ता है, क्योंकि दशरथजी रामचन्द्रके विमुख नहीं हुए, उनका भजन भी नहीं त्याग किया, फिर भी उन्हें पछताना पड़ा है। यथा—'***तोर कलंक मोर पछिताऊ। मुयेहु न मिटिहि न जाइहि काऊ॥***', '***अजहूँ हृदउ जरत तेहि आँचा। रिस परिहास कि साँचहु साँचा॥***' दीनजी '***तनय***' से भरतजीका अर्थ लेते हैं।

मेरी समझमें '***जासु***' श्रीरामजीके लिये ही है न कि भरतके लिये। कैकेयी और मन्थरा रामविमुखी थीं, अयोध्याभरमें कोई और रामविमुख न था। इसीसे कैकेयीको पछताना पड़ा और मन्थराकी भी दुर्दशा हुई। यथा—'***लखि सिय सहित सरल दोउ भाई। कुटिल रानि पछितानि अघाई॥***' (२५२। ५) '***''राम विमुख थलु नरक न लहहीं।***' '***गरइ गलानि कुटिल कैकेई॥***' (२७३। १) '***आह दइअ मैं काह नसावा।***' (१६३। ४-७) दशरथजीका पछतावा त्रियाचरित्रमें फँस जानेका है जिससे वे रामराज्याभिषेक न कर सके।

''सुदिन सुमंगल तबहिं जब राम होहिं जुवराज''

वशिष्ठजी त्रिकालदर्शी हैं उन्होंने राजासे स्पष्ट क्यों न कह दिया कि इस समय युवराज्य न होगा? उन्होंने यथार्थ क्यों न कह दिया कि ऐसा आगे होगा?

१-पं० रामकुमारजी कहते हैं कि यदि सब कह देते तो राजा सावधान हो जाते, रामजीकी वन-लीलामें बाधा पड़ती। वसिष्ठजीका तो सिद्धान्त है कि रामरुख रखते हुए कार्य किया जाय यथा—'***राखे राम रजाइ रुख हम सब कर हित होइ।***' (२५४) वे स्वामित्व भाव लिये हुए हैं, और राजा वात्सल्यमें पगे हैं। वे राजाका रुख कदापि नहीं रख सकते। इसीसे यहाँ कहा भी है '***भयउ तुम्हार तनय सोइ स्वामी***' अर्थात् वे तो सबके स्वामी हैं, सबके मनकी करेंगे। '***बेगि बिलंबु न करिय''''***' जो गुरुने यहाँ कहा वह सब राजाके खातिरसे। ये बचन राजाके '***कहिय कृपा करि करिय समाजू***' के उत्तरमें कहे गये। वसिष्ठजीने न तो राजाको सुदिन (मुहूर्त) बताया और न युवराज्यका होना ही निश्चित किया, केवल यही कहा कि '***जब जुवराज होहिं***' इन शब्दोंसे सूचित होता है कि वे होनहार जानते हैं, उन्हें श्रीरामजीकी खातिर (प्रसन्नता) मंजूर है, उन्होंने श्रीरामजीका रुख रखा। '***नाथ रामु करिअहिं जवराजू***' का उत्तर दोहेके उत्तरार्धमें है कि जब श्रीरामजी युवराज हों (होना चाहें) तब हम उनको युवराज्य दे सकते हैं। '***तबहिं जब***' से जनाया कि यह सुमङ्गल कालाभिमानी देवताकी कृपा-सापेक्ष (कृपापर निर्भर) नहीं है। श्रीरामजी स्वतन्त्र हैं। राज्याभिषेक उन्हींके अधीन है।

२-श्रीरामप्रतापदासजी कहते हैं कि प्रभुकी माया बड़ी प्रबल है। वह बड़े-बड़े विज्ञानियोंको मोहित कर लेती है। उनकी इच्छासे इस समय वसिष्ठजी भी माधुर्य और वात्सल्यमें भूल गये। न भूलते तो उनको उचित था कि राजाको सावधान कर देते। क्यों न करते? क्या उनके मनमें राम-राज्याभिषेककी अभिलाषा न थी? अवश्य थी। रावण-वध पीछे हो जाता।

३-गौड़जी—वसिष्ठजी त्रिकालज्ञ हैं और भविष्यकी घटनाओंको भी जानते हैं फिर भी जीव हैं। उनकी त्रिकालज्ञता सापेक्ष्य है, परम नहीं और विशुद्ध ज्ञानीकी दृष्टिसे मानवशरीरकी मर्यादाके भीतर काम करना

उनका परम कर्तव्य है। साधारणतया पुरोहित त्रिकालज्ञ नहीं होते । ज्योतिषकी गणनासे शुभमुहूर्त निकालकर यजमानको बताते हैं। उद्योग भरसक यही रहता है कि यजमानका अभीष्ट सिद्ध हो। वैसे अनेक अदृष्ट कारणोंसे जो शुभकालोचित फलवाप्तिमें बाधक होते हैं, अनेक अनिष्ट घटनाएँ घट ही जाती हैं। यद्यपि वसिष्ठजी जानते हैं कि रामराज्याभिषेक अभी न होगा तो भी वह राजाकी अभिलाषाके मार्गमें व्यर्थ ही क्यों रोड़े अटकावें। विशुद्ध ज्ञानीकी दृष्टिसे वसिष्ठजीने यही किया जो उनका कर्तव्य था, फिर इसमें भी सन्देह नहीं कि उनकी वाग्देवताकी मर्मपूर्ण शब्दावलीको मनोरथविमोहित राजा दशरथने समझ न पाये।

४—बाबू जंगबहादुरसिंह—जो जीव सर्वज्ञ हैं, वे और सब विषयोंमें सर्वज्ञ हैं न कि ईश्वरके विषयमें। नारदजी भी तो सर्वज्ञ थे फिर शीलनिधिकी कन्यासे विवाह करनेके हेतु ईश्वरको क्यों भूल गये और दुर्वचन कह बैठे। श्रीलक्ष्मणजीने माया सीताका मर्म न जाना। इसी प्रकार यहाँ समझना चाहिये। (मानस-शङ्कामोचन)

५—पंजाबीजी कहते हैं कि गुरुने यहाँ श्लिष्ट शब्दोंमें राजाकी रुचि भी रखी और सत्य भी कहा, क्योंकि वे सर्वज्ञ हैं, जानते थे कि विघ्न होगा। उनके वचन हैं *'सुदिन सुमंगल तबहिं जब राम होहिं जुवराज'* अर्थात् दिन मुहूर्तका शोधन ही क्या? उसका सोचना देखना क्या? वही दिन शुभ और माङ्गलिक है जिस दिन उनको युवराज प्राप्त हो यहाँ कोई सुदिन नहीं निश्चय करते, न यही कहते हैं कि युवराज बनाओ।

६—*'राम होहिं'* पद देते हैं। ऐसा कहकर जनाते हैं कि वे अभी युवराज न होंगे, जिस दिन वे युवराज बनें वही सुदिन है। गीतावलीमें वसिष्ठजीके जो वचन हैं उनसे मिलान कीजिये—*'महाराज भलो काज बिचार्‌यो, बेगि बिलंबु न कीजै। बिधि दाहिनो होइ तौ सब मिलि जनम लाहु लुटि लीजै॥'* (२। १) यदि यह कहें कि राजा तो सुदिन विचार कर गये थे और उन्होंने गुरुसे कहा भी तो भी यही गुप्त अभिप्राय निकलता है कि उन्हें तो युवराज होना ही नहीं, तुमने सुदिन विचरवाया है, पर सुदिन नहीं है, सुदिन तो वही होगा जब वे राजा हो जायँगे।

७—मयङ्ककार कहते हैं कि भाव यह है कि तुम अपने इच्छानुकूल तैयारी करो, अपना कर्तव्य करो, परन्तु वे तो ४१वर्षकी अवस्थामें राज्य ग्रहण करेंगे यह समझकर कहते हैं कि जब वे युवराज हो जायँ तभी मङ्गल जानना।

श्लिष्टपदद्वारा गूढ़ अर्थका प्रकट होना 'विवृतोक्ति' अलङ्कार है।

मुदित महीपति मंदिर आये। सेवक सचिव सुमंत्र बोलाये॥ १॥
कहि जय जीव सीस तिन्ह नाये। भूप सुमंगल बचन सुनाये॥ २॥
*** [प्रमुदित मोहि कहेउ गुरु आजू। रामहिं राय देहु जुवराजू]॥ ३॥**
जौ पाँचहिं † मत लागइ नीका। करहु हरषि हिय रामहिं टीका॥ ४॥

शब्दार्थ—**मंदिर**=घर, महल, वासस्थान। **महीपति**=पृथ्वीका स्वामी, राजा। **'जय जीव'**—यह शब्द केवल

* यह अर्धाली छक्कनलालजीकी प्रतिमें नहीं है और न राजापुरवालीमें। पं० रामकुमारजी कहते हैं कि इसके न होनेसे भी कोई त्रुटि नहीं जान पड़ती; वरं च इससे एक शङ्का भी उत्पन्न होती है कि गुरुने तो ऐसा कहा ही नहीं था, यद्यपि इसका समाधान भी हो जाता है। गुरुकी आज्ञा सुनायी जिसमें मन्त्री भी प्रसन्न होकर सम्मति दे दें। श्रीपोद्दारजी लिखते हैं कि 'गुरु वसिष्ठने राजाको यह आज्ञा दी भी नहीं कि रामको युवराज बना दो, उन्होंने तो राजाके प्रस्तावका अनुमोदनभर किया था । ऐसी दशामें सत्यसन्ध महाराज दशरथने मन्त्रियोंसे ऐसी बात कही हो यह युक्तिसङ्गत नहीं मालूम होता और इस अर्धालीके न रहनेसे अर्थकी संगति न बैठती हो सो बात भी नहीं है। 'सुमंगल बचन' से श्रीरामजीको युवराज बनानेकी बात आ ही जाती है। गुरुकी आज्ञा सुनायी जिसमें मन्त्री भी प्रसन्न होकर सम्मति दे दें।

† 'पंचहि जौं'—(बाबा रघुनाथदास) 'पंचहि' काशीमें और 'पाँचहि' राजापुर और भागवतदास एवं रामगुलामद्विवेदीजीका पाठ है।

पद्यमें प्रयुक्त होता है। यह एक प्रकारका अभिवादन है जिसका अर्थ है 'जय हो और जियो।' इसका प्रयोग प्रणाम आदिके समान होता था। (श० सा०) विशेष बा०३३२ (८) में देखिये। गौड़जी कहते हैं कि यह 'जयतु, जीवतु' का लघुरूप है। अर्थात् सदा विजयी हो और चिरञ्जीवी हो। *'पाँचहिं'*—पाँचोंको, पाँचको। 'पाँच, पञ्च'—पाँच ओर पाँचसे अधिक मनुष्योंका समुदाय जो कि मामला निबटानेको एकत्र हों उन्हें प्राय: 'पञ्च' कहते हैं। इसमें पाँचसे कम न होते थे, इसीसे 'पञ्च' नाम पड़ा। परन्तु अब तो एक भी हो सकता है। इस शब्दसे जहाँ-तहाँ 'सर्व साधारण, लोक, समाज, मुखिया लोग' का भाव वा अर्थ लिया जाता है, यथा—*'पंच कहे सिव सती बिबाही'*, *'मोरि बात सब बिधिहि बनाई। प्रजा पाँच कत करहु सहाई॥'*, *'साँचे परे पावों पान पाँचमें परै प्रमान'* (इति विनय०) जिनकी सलाहसे राजकाज किया जाता है उन्हें पञ्च कहते हैं। *'मत'*=सलाह, विचार, मन्त्रणा। *'टीका'*=तिलक, राज्याभिषेक। उँगलीमें गीला चन्दन, रोरी, केसर आदि पोतकर मस्तकके मध्यमें शुभ अवसरोंपर लगाया जाता है। राजसिंहासन या गद्दीपर बैठनेपर भी तिलक (टीका) होता है; यथा—*'प्रथम तिलक बसिष्ठ मुनि कीन्हा। पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा॥'* (७। १२)

अर्थ—राजा आनन्दमें भरे हुए घर (राजभवनमें) आये। सेवकोंसे* सुमन्त आदि मन्त्रियोंको (वा, सेवक, मन्त्री और सुमन्तको) बुलवा भेजा॥ १॥ उन्होंने 'जयजीव' कहकर सिर नवाया। (राजाको प्रणाम किया।) तब राजाने सुन्दर मङ्गल-वचन (समाचार) सुनाये॥ २॥ गुरुजीने आज बहुत प्रसन्न होकर मुझसे कहा है कि 'राजन्! रामको युवराज्य दो'॥ ३॥ जो यह मत आप सब पञ्चोंको अच्छा लगे तो हृदयमें हर्षित होकर रामचन्द्रजीका तिलक कीजिये॥ ४॥

टिप्पणी—१ *'मुदित महीपति'''* इति। (क) गुरुजीसे राजाने कहा था कि *'कहिय कृपा करि करिअ समाजू।'* सो उनकी आज्ञा हो गयी कि *'साजिअ सबुइ समाजु।'* गुरुके यहाँ अभिलाषा पूर्ण हुई। उनके वचनोंका उल्लङ्घन कोई नहीं कर सकता। अतएव हमारा मनोरथ अवश्य पूर्ण होगा। मनोरथकी सिद्धि समझकर राजा *'मुदित'* हैं। इसीसे हर्षसे आनन्द भरे हुए घर आये। (ख) *'सेवक सचिव सुमंत्र बोलाए'* इति। सुमन्त्रजी प्रधानमन्त्री हैं, इसीसे उनका पृथक् नाम लिया। गुरुकी आज्ञा है कि *'बेगि बिलंबु न करिअ'*, इसीसे घर आते ही तुरंत सेवकोंको, मन्त्रियोंको बुलाया, मन्त्रियोंको सम्मति लेनेके लिये और सेवकों काम करनेके लिये। इन्हीं सेवकोंके विषयमें कहा है कि *'जो मुनीस जेहि आयसु दीन्हा। सो तेहि काजु प्रथम जनु कीन्हा॥'*

टिप्पणी २—*'कहि जय जीव'''* इति। (क) *'जय जीव'* आप सब जीवोंसे उत्कर्ष बर्तें ऐसा कहकर प्रणाम करनेकी मन्त्रियोंकी रीति है। राजाको मन्त्रियोंने *'जय जीव'* यह मङ्गल वचन सुनाये और राजाने उनको 'सुमङ्गल' वचन सुनाये (वे मङ्गल वचन थे और ये अत्यन्त सुन्दर मङ्गल वचन हैं।) गुरुजीने जो कहा था कि *'सुदिन सुमंगल तबहिं जब राम होहिं जुवराज'*, यही सुमङ्गल वचन है जो सुनाये, यही आगे स्पष्ट करते हैं। श्रीरामजीको युवराज बनानेका समाचार ही 'सुमङ्गल वचन' है।

नोट—१ *'प्रमुदित मोहि कहेउ गुरु आजू।'''* इति। पूर्व कहा है कि *'सब बिधि गुरु प्रसन्न जिय जानी'* इसीसे यहाँ *'प्रमुदित कहेउ'* पद दिया। यहाँ राजा गुरुकी ओट लेकर मङ्गल समाचार कह रहे हैं। उनका प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा देना कहते हैं। यद्यपि गुरुने स्पष्ट यह नहीं कहा कि रामचन्द्रजीको युवराजपद दो, तथापि राजा तो उनकी प्रसन्नता, और उनके *'बेगि'*, *'बिलंबु न करिअ'*, *'साजिअ सबुइ समाज'* इन शब्दोंसे सत्य ही वही अर्थ समझ रहे हैं जैसा कि वे कह रहे हैं। गुरुकी प्रसन्नता और आज्ञा बताकर सूचित करते हैं कि उनकी

---

* यहाँ मन्त्रियोंसे सलाह ले रहे हैं। सेवक पञ्च नहीं कहे जा सकते। इससे अर्थ यही सुसङ्गत जान पड़ता है कि राजाने सेवकोंसे सुमन्त आदि मन्त्रियोंको बुला भेजा। इस अर्थसे दीनजी सहमत हैं। अन्य टीकाकारोंने कोष्ठकमें दिया हुआ अर्थ किया है। पं० रामकुमारजी सेवकोंको बुलाना भी कहते हैं, वह इसलिये कि गुरुजीकी आज्ञा पालन करनेको उनसे कहना है।

आज्ञा है, इससे विशेष सोचने-विचारनेकी आवश्यकता नहीं; गुरु-आज्ञा अमिट है, इसके पालनमें ढील करना उचित नहीं। पं० शिवलाल पाठकजी कहते हैं कि वसिष्ठजीने तो अपनी तरफसे श्रीरामजीको युवराज्य देनेको कहा नहीं था, स्वयं चक्रवर्तीजीने श्रीरामजीको युवराज्य देनेकी प्रार्थना की थी। वसिष्ठजीने उनके प्रस्तावका अनुमोदनभर किया था। तब राजाने ऐसा क्यों कहा?' और उसका उत्तर देते हैं कि कैकेयीके विवाहके समय राजाने उसके पुत्रको राज्य देना स्वीकार किया था, अतएव गुरुके मतसे कहते हैं। अपने मतसे कहते सकुचते हैं कि लोग अधर्मी समझेंगे। गुरु-आज्ञा समझ मन्त्री उसमें मीनमेष न करेंगे।

पंजाबीजीका मत है कि गुरुका नाम लिया; क्योंकि उत्तम कार्यमें अहंता न चाहिये वह अयोग्य है। किंवा इससे कि मन्त्री यह न समझें कि राजाने हमारी सम्मति लिये बिना ही कार्य निश्चय कर लिया।

टिप्पणी—३ '*जौ पाँचहि मत*.....' इति। (क) '*मत*' अर्थात् गुरुजीकी जो आज्ञा है, वह मत यदि आप सबको अच्छा लगे। राज्य श्रीभरतको लिख चुके हैं पर श्रीरामजीको ज्येष्ठ पुत्र समझकर कुलरीतिके अनुसार उन्हींको युवराज्य देना चाहते हैं, इसीसे '*जौ*' शब्द दिया। रामराज्य तो सबको अच्छा लगता ही है, यथा—'***सब के उर अभिलाषु अस***', '***लागइ नीका***' उसके लिये नहीं कहा गया वरञ्च गुरुकी आज्ञारूपी मतके विषयमें कहा गया है। जैसे राजा मन्त्रियोंसे कह रहे हैं कि गुरुका मत यह है, वैसे ही राजाने गुरुसे कहा था कि सेवक सचिवादि सभीको राम उसी तरह प्रिय हैं जैसे मुझको, अर्थात् रामराज्य होना सबको प्रिय है, यह मत सबको प्रिय लगता है। (ख) '***करहु हरषि हिय रामहि टीका***'—भाव कि जैसे गुरुजीने हर्षपूर्वक आज्ञा दी वैसे ही आप भी हर्षित होकर तिलक करें?

नोट—२ यहाँ राजाकी राजनीतिमें निपुणता दिखाते हैं। राजनीति है कि जो मनोरथ हो उसे अपने हृदयमें स्वयं विचारे, जब विचारमें निश्चय ठहरे तब मुख्य मन्त्रीसे विचार करे, उसकी भी सम्मति हो तब और मन्त्रियोंसे भी पूछे। जब सबका सम्मत हो तब सभामें प्रकाशित करे। यहाँ राजा तीन बातें कर चुके। १-'***यह बिचार उर आनि***', २-'***गुरुहि सुनायउ जाइ***', ३-'***सेवक सचिव सुमंत्र बोलाये।***' रही चौथी, सो आगे सभामें कहते हैं कि '***रामराज अभिषेक हित बेगि करहु सोइ सोइ।***' दोहावलीमें कहा है—'***रीझि आपनी बूझि पर खीझि बिचार बिहीन। ते उपदेस न मानहीं मोह महोदधि मीन॥***' (४८५) (मुं० रोशनलाल) वाल्मीकीयमें भी तीन बार विचार करना कहा है। प्रथम अपने मनमें विचार किया। फिर अपने विचारको सामन्त राजाओं आदिकी सभामें परामर्शके लिये प्रकट किया। (सर्ग २ व ३)। फिर सर्ग ४ में मन्त्रियोंके साथ पुनः विचार किया है, यथा—'**गतेष्वथ नृपो भूयः पौरेषु सह मन्त्रिभिः। मन्त्रयित्वा ततश्चक्रे निश्चयज्ञः स निश्चयम्॥**' (१)

'***जौं पाँचहि मत लागै नीका***' इति। ऐसा ही वाल्मीकीय० में कहा है, यथा—'**यदिदं मेऽनुरूपार्थं मया साधु सुमन्त्रितम्। भवन्तो मेऽनुमन्यन्तां कथं वा करवाण्यहम्॥ यद्यप्येषा मम प्रीतिर्हितमन्यद्विचिन्त्यताम्। अन्या मध्यस्थचिन्ता तु विमर्दाभ्यधिकोदया॥**' (२। २। १५-१६) अर्थात् मैंने जो विचार आपके सामने रखा है वह यदि विचार पूर्ण हो और इससे सबोंका हित हो तो आप इसे स्वीकार करें। यदि इन दोनों बातोंमेंसे कोई न हो, अथवा एक हो, एक न हो, तो आप मुझे बतायें कि मैं क्या करूँ। रामचन्द्रको मैं युवराज बनाना चाहता हूँ, यह मुझे प्रिय है, पर अपने और राज्यके हितकी बात आप लोग सोचें, क्योंकि मेरा विचार एक पक्षका है। मध्यस्थका विचार दूसरा है। वह उत्तर-प्रत्युत्तरसे मँजा होनेके कारण अधिक उज्ज्वल होता है।—ये सब भाव इस चरणमें आ जाते हैं।

गुरुकी आज्ञा होनेपर भी मन्त्रियों आदिके सामने प्रस्ताव रखनेसे सिद्ध होता है कि उस समय जनपदकी सम्मतिका कितना गौरव था और राजा दशरथ कितने नीतिज्ञ थे। अ० दी० कारका मत है कि एकरारपत्रपर वामदेवादिके हस्ताक्षर थे, इसीसे राजाने यद्यपि गुरु-आज्ञा-गरीयसीके ऊपर भार रखा तथापि पञ्चोंकी सम्मति लेकर आप निर्दोष होना चाहते हैं। (सत्योपाख्यानमें प्रतिज्ञापत्रकी चर्चा है। पर मानसमें भूलसे भी कहीं इसकी चर्चा नहीं है और न वाल्मीकीयमें।)

नोट ३—'*मुदित*', '*हर्षित*' इति। मोद, आनन्द और सुखको कुछ लोग हर्षका पर्यायवाची समझकर अर्थ किया करते हैं पर दोनोंमें अन्तर है। कोई उत्तम समाचार सुनने अथवा कोई उत्तम पदार्थ प्राप्त करनेपर मनमें सहसा जो वृत्ति उत्पन्न होती है वह 'हर्ष' है; परन्तु सुख इस प्रकार आकस्मिक नहीं होता। हर्षकी अपेक्षा अधिक स्थायी होता है। अनेक प्रकारकी चिन्ताओं आदिसे बचे रहनेपर और अनेक प्रकारकी वासनाओं आदिकी तृप्ति होनेपर मनमें जैसी प्रिय अनुभूति होती है वह सुख है। (श०सा०)

मंत्री मुदित सुनत प्रिय बानी। अभिमत बिरव परेउ जनु पानी॥५॥

बिनती सचिव करहिं कर जोरी। जिअहु जगतपति बरिस करोरी॥६॥

जगमंगल भल काज बिचारा। बेगिअ* नाथ न लाइअ बारा॥७॥

शब्दार्थ—'**बिरव**'[सं० बिरुह, वीरुध। इस शब्दका प्रयोग प्रान्तिक है] पौधा, छोटा वृक्ष। '**बरिस**'=वर्ष। '**बेगिय**'—'वेग' से हिन्दीमें क्रिया बनायी गयी। '**बेगि**'=शीघ्र, जल्दीसे। इसका प्रयोग प्रान्तिक है और पद्यहीमें पाया जाता है। '**बेगिय**'=शीघ्रतापूर्वक कीजिये। वा, बेगिय=जल्दी ही। '**बारा**' (सं० वार)=अतिकाल, बेर, विलम्ब। यथा—'*बड़ी बार लगि रहे निहारी*', '*न लाइय बारा*'=देर न लगाइये; देर न कीजिये (यह मुहावरा है)।

अर्थ—इस प्रिय वाणीको सुनते ही मन्त्री आनन्दित हुए। मानो अभिमत (मनोरथ) रूपी बिरवेमें पानी पड़ गया॥५॥ मन्त्री हाथ जोड़कर विनय करने लगे—हे जगत्पति! आप करोड़ों वर्ष जियें॥६॥ आपने जगत्‌भरका मङ्गल करनेवाला काम सोचा है। हे नाथ! शीघ्र ही कीजिये, देर न लगाइये॥७॥

नोट—१ '*मंत्री मुदित सुनत प्रिय बानी।*' इति। (क) रामराज्य (श्रीरामजीका तिलक करो) प्रियवाणी है। (रामराज्य सुनाया अतः हर्षित हुए। हर्षित हुए, इसीसे शीघ्रता करनेके लिये हाथ जोड़कर विनय करते हैं। (पं० रा० कु०) (ख)—ऊपर कहा है कि '*सेवक सचिव सुमंत्र बोलाए।*' पर हर्ष यहाँ केवल मन्त्रीका कहा। इससे यह न समझें कि औरोंको हर्ष नहीं हुआ। अन्तिम पद देकर उसके पूर्वकथित लोगोंको भी सूचित कर दिया अथवा, मन्त्री प्रधान हैं, उनको कहकर सबका हर्ष जना दिया (पं० रा० कु०) अथवा, इससे जनाया कि यह सभा मन्त्रियोंकी ही थी। मन्त्रियोंसे ही बात कही गयी, अतः उनका हर्षित होना कहा गया। (ग) ऐसा ही वाल्मी० २। २। १७ में कहा है, यथा—'**इति ब्रुवन्तं मुदिताः प्रत्यनन्दन्नृपा नृपम्। वृष्टिमन्तं महामेघं नर्दन्त इव बर्हिणः॥**' अर्थात् सभामें उपस्थित सब राजा लोग '*मुदित*' हुए; राजाके आनन्दके साथ उन्होंने अपना आनन्द प्रकाशित किया। जैसे बरसनेवाले मेघोंका गर्जन सुनकर मयूर उस गर्जन-ध्वनिका अनुकरण अपने शब्दोंद्वारा करते हैं।—वाल्मी० के '*मुदित*' शब्दको यहाँ देकर वहाँका भाव भी यहाँ दरसा दिया है।

नोट २—'*अभिमत बिरव परेउ जनु पानी*' इति। सबके हृदयमें यह अभिलाषा थी ही—'*सबके उर अभिलाष अस कहहिं मनाइ महेस*''''*।*' वह मनोरथरूपी बिरवा उनके हृदयस्थलपर पूर्वहीसे रोपा हुआ था, पर सूख रहा था। राजाके अनुकूल वचनरूपी जल पड़नेसे वह पौधा लहलहा उठा, उसकी पूर्तिकी आशा हुई। पौधेको हरा-भरा देख सब आनन्दमें मग्न हो गये और राजाको धन्यवाद—आशीर्वाद देने लगे। (ख) पं० रामकुमारजी कहते हैं कि जैसे गुरुवाक्यसे राजा मुदित हुए वैसे ही वे भी हुए। जैसे बीज पृथ्वीमें गुप्त रहता है, जल पड़नेसे वह प्रकट होता है वैसे ही इनके हृदयमें मनोरथ गुप्त था सो राजाके वाक्यरूपी जलको पाकर प्रकट हो गया। (ग) '*अभिमत बिरव परेउ जनु पानी*' यहाँ 'पानी' शब्दका चमत्कार देखिये। 'पानी पड़ जाना' मनोरथके भङ्ग होनेके लिये मुहावरा है। सच ही इनके मनोरथपर पानी पड़ गया। न राज्याभिषेककी चर्चा होती न विघ्न होता। इसीके द्वारा तो आगेकी लीला चलेगी। (घ) '*अभिमत बिरव*' में रूपक है। '*अभिमत बिरव परेउ जनु पानी*' में 'उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा' है।

* बेगिहि—रा० बा०दा०।

नोट—३ '*बिनती करहिं सचिव कर जोरी*' इति। '*बिनती*' शब्द भी भावगर्भित है। आशीर्वादादि तो '*बिनती*' नहीं है। यहाँ '*बिनती*' और '*करजोरी*' शब्द देकर कविने वाल्मीकीयकी इस प्रसंगकी पूरी कथा गुप्त रूपसे जना दी है। वहाँ भी सब लोग राजाकी बात सुनकर प्रसन्न हुए और एकमत्य होकर सबने कहा कि हम सब चाहते हैं कि वे राजा हों। तब राजाने ऊपरसे रुष्ट होकर कहा कि हमें संदेह होता है कि आप लोगोंने मेरा अभिप्राय होनेके कारण अपनी स्वीकृति दी है या आप लोगोंका यथार्थ मत भी यही है, क्योंकि आप लोगोंने तुरत हामी भर ली, सभी एक साथ सहमत हो गये। मैं तो धर्मपूर्वक राज्य करता ही था, फिर आप एक युवराज देखनेकी इच्छा क्यों कर रहे हैं? यह सुनकर वे सब राजासे विनती करने लगे कि श्रीरामजीमें लोकोत्तर गुण हैं जिसके कारण हम सबोंने तुरत अपनी स्वीकृति दे दी। आप वे सब गुण सुनें, हम कहते हैं, ये गुण सबको प्रिय और आनन्द देनेवाले हैं। यथा—'**प्रियानानन्दनान्कृत्स्नान्प्रवक्ष्यामोऽद्य ताञ्छृणु।**' (२। २। २७) हम कहते हैं आप सुनें, यह 'विनती' ही है। इसके आगे सर्गके अन्ततक श्रीरामजीके गुणोंका वर्णन करके अन्तमें उन्होंने कहा कि 'लोककल्याणमें लगे हुए भगवान् देवदेव विष्णुके समान, उदार गुणोंवाले श्रीरामका, हम लोगोंके कल्याणके लिये, शीघ्र आपको राज्याभिषेक करना चाहिये।'—यह विनय उन्होंने हाथ जोड़े हुए की है। यथा—'**तेषामञ्जलिपद्मानि**····।' (२।३।१)

नोट ४ '*जियहु जगतपति*··' इति। (क) राजाके इस कार्यसे जगत्‌भरका पालन, रक्षण और कल्याण होगा, अतः '*जगतपति*' सम्बोधन दिया। यथा—'*जगमंगल भल काज बिचारा*' '*जगतपति*' का सम्बन्ध आगेके इस वचनसे है। पंजाबीजीका मत है कि '*जगतपति*' से जनाया कि तुम्हारे पुत्रका राज्य भी तुम्हारा ही राज्य है। अथवा, भाव कि करोड़ वर्ष जियो जिसमें करोड़ वर्ष जगत्‌की 'पति' अर्थात् रक्षा करो। पा रक्षणे धातु है। (पं० रामकुमारजी) (ख) '*बरिस करोरी*' इति।—प्रसन्नतामें इस प्रकार आशीर्वाद मुँहसे स्वतः निकल पड़ता है। इससे जनाते हैं कि इस कार्यसे आपने हम लोगोंपर बड़ा अनुग्रह किया, आपकी कृपासे हम लोग श्रीरामजीको राज्यपर अभिषिक्त देखेंगे, आप चिरजीवी हों। यथा—'**सर्वे ह्यनुगृहीताः स्म यन्नो रामो महीपतिः।**······**चिरं जीवतु धर्मात्मा राजा दशरथोऽनघः। यत्प्रसादेनाभिषिक्तं रामं द्रक्ष्यामहे वयम्॥**' (वाल्मी०२। ६। २२। २४) (ये पुरवासियोंके वचन हैं।) ☞ 'करोड़ों वर्ष जियो' यह मुहावरा है, आशीर्वादकी एक रीति है जिसका भाव है कि दीर्घायु, दीर्घजीवी हो। यथा—'*जियहु सुखी सय लाख बरीषा।*' (१८६। ५) इस आशीर्वादका तात्पर्य यह नहीं है कि इस शरीरसे इतनी आयु हो वरन् यह भाव है कि बहुत आयु हो और मरनेपर भी तुम्हारा यश युग-युग जागता रहे। कीर्तिसे मनुष्य जीता है, अपकीर्तिसे जीते भी मरा हुआ ही है यथा—'**अकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते।**' (गीता २। ३४) '*अति दरिद्र अजसी जीवत सव सम* ·····।' (६। ३०)

बैजनाथजी कहते हैं कि मन्त्रियोंका आन्तरिक हर्ष राजाके वचनोंद्वारा प्रकट हो गया। आनन्दमें आकर वे अपनी सहानुभूति प्रकट करते तो हैं और इतना ही नहीं किन्तु शीघ्रतापूर्वक कार्य कर डालनेकी सलाह देनेको हैं, परन्तु वे संकुचित हो जाते हैं कि कहीं राजाको यह सन्देह न हो कि हमको राज्यके योग्य नहीं समझते, हमारे प्रजापालनमें अवश्य त्रुटि देखते होंगे तभी तो तुरत ही हाँ-में-हाँ मिला दी। इस सन्देहके निवारणार्थ वे पहले यह कहते हैं कि '*जियहु*···'।

(ग) मन्त्रियोंका मन, वचन, कर्म तीनों दिखाये। मनसे मुदित, तनसे हाथ जोड़े और वचनसे विनय किया (पं०रा०कु०)

टिप्पणी—१ '*जगमंगल भल काज बिचारा।*····' इति। (क) ऊपर '*जगतपति*' सम्बोधन दिया। जगत्पति हैं, अतएव जगन्मात्रका जिसमें मङ्गल है आपने वही कार्य करनेका विचार किया है। राजाने जो कहा था कि '*जौं पाँचहि मत लागइ नीका*' उसके उत्तरमें मन्त्री कहते हैं कि आपने यह भला काम विचारा अर्थात् यह विचार बड़ा उत्तम है; हम पञ्चोंकी कौन कहे यह तो जगत्‌भरको अच्छा लगता है, इससे तो जगन्मात्रका कल्याण है। (ख) राजाका पूर्व विचार करना कहा है, यथा—'*यह बिचारु उर आनि नृप*'।

मन्त्री वही बात यहाँ कहते हैं—'*भल काज बिचारा*' पुनः, गुरुने शीघ्रता करनेकी आज्ञा दी थी—'*बेगि बिलंबु न*', वही बात मन्त्री कहते हैं—'*बेगिअ न लाइअ बारा।*' यह सब बातें उन्होंने अनुमानसे जानीं। ('*बिचारा*' शब्दसे यह ज्ञात होता है कि मन्त्री समझ गये कि यह विचार राजाका ही है, अपना विचार गुरुसे कहनेपर उन्होंने उसका अनुमोदन किया है)। (ग) '*बेगिअ*·····' अर्थात् उत्तम कार्य शीघ्रातिशीघ्र कर लेना चाहिये, विलम्ब करनेसे विघ्न होता है, यह नीति है। ['*बेगिअ नाथ*'—जैसे वसिष्ठजीने कहा था '*बेगि बिलंबु न करिअ नृप*' वैसे ही सब मन्त्री कहते हैं '*बेगिअ*'। गुरु होनेसे वहाँ 'नृप' और मन्त्री होनेसे यहाँ 'नाथ' सम्बोधन है। सभीको लालसा है कि हम श्रीरामजीको शीघ्र युवराज्यपदपर देखें, यथा—'*सबके उर अभिलाषु अस*·········।' (२। १) *कालि लगन भलि केतिक बारा। पूजिहि बिधि अभिलाष हमारा॥ कनक सिंघासन सीय समेता। बैठहिं रामु होइ चित चेता॥*' (११। ४-५) इसीसे सबके मुखसे '*बेगि*' शब्द निकल रहा है। वाल्मी० २। २। ५४ में भी 'हिताय नः क्षिप्रम्' शब्द हैं।]

नृपहि मोद सुनि सचिव सुभाषा। बढ़त बौंड़ जनु लही सुसाखा॥८॥

दो०—कहेउ भूप मुनिराज कर जोइ जोइ आयसु होइ।
राम काज अभिषेक हित बेगि करहु सोइ सोइ॥५॥

शब्दार्थ—'**सुभाषा**'—सुन्दर भाषा, सुन्दर वचन। '**सुसाखा**'-सुन्दर शाखा (डाली)। '**बौंड़**'-(सं० बोराट-वृंत, टहनी) टहनी जो दूरतक डोरीके रूपमें गयी हो, लता, बेल।

अर्थ—मन्त्रियोंकी सुन्दर वाणी सुनकर राजाको इस प्रकारका आनन्द हुआ मानो बढ़ते समय लता सुन्दर डाल (का सहारा) पा गयी॥८॥ राजाने कहा कि मुनिराज (वसिष्ठजी) की जो-जो आज्ञा हो, रामराज्याभिषेकके लिये, वही-वही सब शीघ्र करो॥५॥

नोट—१ '*नृपहि मोद*······' इति। (क) वाल्मीकीयमें भी वचन सुनकर राजा आनन्दित हुए हैं, यथा—'**अहोऽस्मि परमप्रीतः।**' (२। ३। २) (ख) '*जियहु*·····' आदि आशीर्वचनके साथ '*जगमंगल*·····*बेगिअ*' आदि वचन कहे गये हैं जो परम रुचिकर हैं। अतः इन्हें '*सुभाषा*' कहा।

टिप्पणी—१ '*नृपहि मोद सुनि*'' इति। (क) राजाका कार्य मन्त्रियोंके अधीन रहता है। वे ही राजाके हाथ-पैर हैं। वे जिस कार्यके करनेकी सम्मति न दें वह कार्य नहीं हो सकता, इसीपर आगे '*बढ़त बौंड़*'' की उपमा देते हैं। अतएव राजाको आनन्द हुआ। (ख) मन्त्रियोंने राजाकी प्रशंसा की, यथा—'*जग मंगल भल काज बिचारा*' और तिलककी शीघ्रता की, अतएव उनकी वाणीको '*सुभाषा*' कहा। (ख) '*बढ़त बौंड़ जनु लही सुसाखा*' इति। भाव यह कि गुरुजीके वचन सुनकर मोद हुआ, तथा—'*मुदित महीपति मंदिर आए।*' यही मोद बौंड़ है। सुभाषाके सम्बन्धसे सुशाखा कहा। मन्त्रियोंके वचन (अनुमोदन) रूपी सुन्दर शाखा पाकर वह मोदरूपी बौंड़ अधिक बढ़ गयी। सीधी शाखा सुशाखा है, वैसे ही मन्त्रियोंके सीधे वचन हैं।

नोट—२—'*बढ़त बौंड़ जनु लही सुसाखा*' इति। (क) मन्त्रियोंका सुन्दर वचन सुन्दर शाखा है। राजाका मनोरथ लता है। जैसे बेल वृक्षकी डालका सहारा पाकर खूब ऊपरको बढ़ती फैलती है, वैसे ही मन्त्रियोंके वचन सुनकर उन्हें मनोरथ पूर्तिकी अधिक आशा हो गयी। गुरुके वचनसे यह लता बढ़ ही रही थी, अब पूरा आधार मिल गया। अतः 'मोद' बढ़ा।* (ख) मन्त्रियोंके आनन्दको 'बिरव' से रूपक दिया और राजाके आनन्दको 'बौंड़' कहा। इससे यह जनाया कि बिरवा और लता चौमासेभर रहते हैं वैसे ही यह भी आनन्द थोड़े ही दिन रहेगा। (रा० प्र०) (ग) यहाँ 'उक्त विषयावस्तूत्प्रेक्षा' है।

नोट—३—'*मुनिराज कर*······' इति। (क) वसिष्ठजी इक्ष्वाकुमहाराजके समयसे इस कुलके पुरोहित हैं।

* बाबा रामप्रतापदासजी अर्थ करते हैं कि 'सुन्दर बढ़ती हुई शाखा फूलसे सम्पन्न हुई। बौंड़-मौर, मोजर, फूल।'

समस्त रघुवंशी-राजाओंका अभिषेक इन्हींके द्वारा हुआ। समस्त कार्य इन्हींकी आज्ञासे होते हैं, यथा—'**विदितं ते महाराज इक्ष्वाकुकुलदैवतम्॥ वक्ता सर्वेषु कृत्येषु वसिष्ठो भगवानृषिः।**' (वाल्मी० १। ७०। १६-१७) (ये वचन राजाने जनकजीसे कहे हैं कि भगवान् ऋषि वसिष्ठ हमारे कुलके देवता हैं, समस्त कार्योंके करने-करानेका अधिकार इन्हींको है।) अतः उनकी आज्ञा लेनेको कहा। ये कुलकी सब रीति भी जानते हैं, और वेदोंकी रीति तो जानते ही हैं। वाल्मी० सर्ग ४ में भी इन्हींसे सामग्री पूछी गयी है, यथा—'**अभिषेकाय रामस्य यत्कर्म सपरिच्छदम्॥ ६॥ तदद्य भगवन्सर्वमाज्ञापयितुमर्हति।**' (मुनि बहुतसे हैं जैसे कि वामदेव आदि। अतः मुनिराज शब्द देकर वसिष्ठजीको सूचित किया। पं० रा० कु०)

टिप्पणी—२ *'कहेउ भूप·····'* इति। (क) राजा भरतजीको युवराज्य देनेकी प्रतिज्ञा केकयराजसे कर चुके हैं और अब श्रीरामजीको राज्य देना चाहते हैं। इससे विघ्नका भय है। अतएव शीघ्रता करनेको कहते हैं। [पर मेरी समझमें मानसकल्पवाली कथाका यह मत नहीं है। शीघ्रताका कारण हम पूर्व लिख आये हैं कि राजाको मृत्यु आदि सूचक अपशकुन हो रहे हैं, जन्मकुण्डलीके अनुसार इस समय नक्षत्र भी दूषित हैं। जन्मनक्षत्र (सूर्य, मङ्गल और राहु इन) दारुण ग्रहोंसे आक्रान्त हुआ है, यथा—'**अवष्टब्धं च मे राम नक्षत्रं दारुणग्रहैः।**' (वाल्मी० २। ४। १८) इस अनिष्टका उनको भय है और जिस दिन यह विचार और अपशकुन हुए, उसीके दूसरे ही दिन राज्याभिषेकके लिये शुभ मुहूर्त मिलता था। अतएव राजाने शीघ्रता की। शीघ्रताहीके कारण वे केकयराज और जनकमहाराजको भी न बुला सके, उन्होंने सोचा कि इस प्रिय उत्सवकी समाप्तिपर संवाद भेज दिया जायेगा। (वाल्मी० २। १। ४८) सत्योपाख्यान और वाल्मीकीयके, '**विप्रोषितश्च भरतो यावदेव पुरादितः। तावदेवाभिषेकस्ते प्राप्तकालो मतो मम॥**' (२। ४। २५) अर्थात् जबतक भरतजी विदेशमें हैं तबतक तुम्हारा अभिषेक हो जाना उचित जान पड़ता है, इन वचनोंसे प्रतिज्ञाकी आशङ्का अवश्य समझी जा सकती है, पर मानसकारका मत यह नहीं है] रामराज्यके लिये सब बातोंमें शीघ्रता है। (गुरु वसिष्ठके वचनोंसे *'बेगि'* की परम्परा चली आ रही है) प्रथम गुरुकी आज्ञा हुई—*'बेगि बिलंबु न करिअ'*, फिर मन्त्रियोंका सम्मत कि *'बेगिअ नाथ न लाइअ बारा'* और अब नृपाज्ञा कि *'अभिषेक हित बेगि करहु सोइ सोइ'*। आगे गुरुकी आज्ञा कार्य करनेवालोंको और करनेवालोंके काममें भी शीघ्रता कहते हैं। यथा—*'कहहु बनावन बेगि बजारू'*, *'जो मुनीस जेहि आयसु दीन्हा। सो तेहि काजु प्रथम जनु कीन्हा॥'* (*'बेगि'* शब्द गुरुके यहाँसे निकलकर मन्त्री, राजा, सेवक सभीके हृदयमें भर गया। सभीको शीघ्रता है। हरि इच्छा! क्योंकि 'कल ही तिलक हो जाय' यह निश्चित किया है।) (ख) मुहुर्त निकट है और गुरुकी आज्ञा भी है, अतएव *'बेगि करहु'* कहा। ☞ गुरुने राजाको और राजाने मन्त्रियों और सेवकोंको आज्ञा दी। गुरुने आज्ञा दी थी कि *'साजिअ सबुइ समाज'*, वही आज्ञा राजाने इनको दी—*'जोइ जोइ·····करहु सोइ सोइ।'* (ग) अ० रा० में सुमन्त्रजीको ऐसी ही आज्ञा दी गयी है। यथा—'**आज्ञापयति यद्यत्त्वां मुनिस्तत्तत्समानय। यौवराज्येऽभिषेक्ष्यामि श्वोभूते रघुनन्दनम्॥**' (२। २। ७) वाल्मीकीयमें भृत्योंको आज्ञा दी है। (२।३।८)

नोट—४ *'बेगि'* इति। अ० रा० में लिखा है कि ब्रह्माजीने देवर्षि नारदद्वारा श्रीरामजीके पास सन्देसा भेजा था कि आपका अवतार रावणवधके लिये हुआ है किन्तु आपके पिता आपको राज्यशासनके लिये अभिषिक्त करनेवाले हैं। आपने जो प्रतिज्ञा की उसे आप सत्य करें। (२। १। ३२—३५)। इसपर श्रीरामजीने हँसकर उत्तर दिया कि मैं सब जानता हूँ, मैं कल ही वनको जाऊँगा···(श्लोक ३५—३९)। करूणासिन्धुजी कहते हैं कि इसीसे (हरि इच्छासे) यह शीघ्रता सबके वचनों और कामोंमें आकस्मिक स्वतः भरी हुई है।

हरषि मुनीस कहेउ मृदु बानी। आनहु सकल सुतीरथ पानी॥ १॥
औषध मूल फूल फल पाना। कहे नाम गनि मंगल नाना॥ २॥

चामर चरम* बसन बहु भाँती। रोम पाट पट अगनित जाती॥ ३॥
मनिगन मंगल बस्तु अनेका। जो जग जोग भूप अभिषेका॥ ४॥

शब्दार्थ—**'औषध'**—नवग्रहोंकी पूजाके लिये जैसे—अर्क, पलाश, खैर, अपामार्ग, पीपल, गूलर, शमी, दूब, काँस। अथवा आस्पदी आदि शतौषधी। अथवा सर्वौषधि अर्थात् जटामासी, वच, कूट, शिलाजीत, दोनों प्रकारकी हलदी शटी (कचूर), चम्पा और मोथा। यथा—'**मुरा मांसी वचा कुष्टं शैलेयं रजनीद्वयम्। शटीचम्पकमुस्तञ्च सर्वौषधिगणः स्मृतः॥**' (पुरोहितदर्पण। सि०ति०) **'मूल'**, जैसे—मोथी, मुरेठी, शतावर। **'फूल'** (समयानुकूल बदलते रहते हैं)= कुन्द, गुलाब, चमेली, चम्पा इत्यादि। (बैजनाथजी) **'पाना'** (पर्ण) =पान, पत्र, पत्ते; जैसे आम, केला, तुलसी इत्यादिके।—(दीनजी) **'चामर'**=चँवर या मुरछल, सुरा गायकी पूँछके बालों और चन्दनकी लकड़ीसे बनता है। **'चरम'** (चर्म)=मृगछाला, बाघाम्बर इत्यादि। **रोमपाटपट**=रोमपट, पाटपट और पट; अर्थात् ऊनी, रेशमी और सूती कपड़े। **'जाति'**=किस्म, प्रकार।

अर्थ—मुनिराजने प्रसन्न होकर कोमल (मीठी) वाणीसे कहा—समस्त श्रेष्ठ तीर्थोंका जल ले आओ॥ १॥ (बहुत तरहके) सर्वौषध, मूल, फूल, फल, पान एवं पत्र आदि अनेक मङ्गल पदार्थोंके नाम गिनाकर बताये॥ २॥ चँवर, मृगादिके चर्म, बहुत तरहके वस्त्र, बहुत जातिके ऊनी, रेशमी और सूती कपड़े, अनेक माङ्गलिक रत्न और भी अनेक माङ्गलिक पदार्थ (बताये) जो संसारमें राज्याभिषेकके योग्य (समझे जाते हैं)॥ ३-४॥

टिप्पणी—१ *'हरषि मुनीस······'* इति। (क) मङ्गल वस्तुओंके बतलानेमें हर्ष होना भी मङ्गल है। राजाने कहा था कि कृपा करके सामग्री जुटानेको कहिये, यथा—*'कहिय कृपा करि करिय समाजू।'* गुरुजी सामग्रीके नाम गिनानेके समय सब सामग्री हर्षित होकर बता रहे हैं, यह हर्ष कृपाका द्योतक है। (*'मृदुबानी'*—यह स्वभाव है। या रामराज्याभिषेकमें इनकी भी हार्दिक प्रीति है और राजापर अनुग्रह है, और हर्ष है, अतः वचन भी मृदु निकले)। (ख) *'सकल सुतीरथ पानी'*—*'कहे नाम गनि'* का अन्वय सबके साथ है। समस्त तीर्थोंके नाम बताये। ['सुतीर्थ' अर्थात् विशेष(श्रेष्ठ महत्त्ववाले) तीर्थ जो संसारमें प्रसिद्ध हैं। इससे जनाया कि गङ्गा-यमुना-सङ्गमका जल; जो पवित्र नदियाँ पूर्वकी ओर बहती हैं, उत्तर-दक्षिणकी ओर बहती हैं, उनका जल; समुद्रोंका जल तथा पवित्र कुण्डों, तालाबों और कूपोंका जल लाया जावे यथा—'**गङ्गायमुनयोः पुण्यात्संगमादाहृतं जलम्॥ याश्चान्याः सरितः पुण्या ह्रदाः कूपाः सरांसि च। प्राग्वाहाश्चोर्ध्ववाहाश्च तिर्यग्वाहाश्च क्षीरिणः॥ ताभ्याश्चेवाहृतं तोयं समुद्रेभ्यश्च सर्वशः॥**' (वाल्मी०२। १५। ५—७) (ग) यहाँ *'सुतीरथ जल'* क्यों न कहा? जल शब्द श्रेष्ठ है, पानी शब्द हलका है। सुतीर्थके सम्बन्धसे 'जल' शब्द देना चाहिये था। यहाँ 'पानी' हलका शब्द रखा, क्योंकि यह जल राज्याभिषेकके कालमें नहीं आयेगा, पानी ही (कूप) में डाला जायगा। (पं० रामगुलाम द्विवेदी)] (घ) औषधादिके पहले 'पानी' शब्द दिया क्योंकि पानी ही औषधादिको उत्पन्न करता है। (ङ) *'औषधमूल···नाना'* का अन्वय सबमें है, इसीसे उसे अन्तमें कहा। इससे जनाया कि सबकी संख्या भी बतायी कि अमुक-अमुक पदार्थ इतने-इतने चाहिये। औषधादिके नाम बताये। [औषधादिकी गणना यहाँ नहीं दी, क्योंकि संख्यामें मतभेद है। 'औषधसे 'सर्वौषधि' का अर्थ ग्रहण होता है, यथा—'**सर्वौषधीरपि**' (वाल्मी० २। ३। ८) [(च) *'चामर चरम······'* इति। दो चँवर सिरपर डुलानेके लिये होते हैं। चर्म व्याघ्रके। वाल्मीकीयमें भी व्याघ्रचर्म कहा है। अभिषेकमें तीन नवीन व्याघ्रचर्मों-का काम पड़ता है, यथा—'**नववैयाघ्रचर्माणि त्रीणि चानय।**' (अ० रा० २। २। ११) जिस रथपर सवारी निकाली जाती है उसपर भी व्याघ्रचर्म बिछाया जाता है, यथा—'**रथश्च सम्यगास्तीर्णो भास्वता व्याघ्रचर्मणा।**' (वाल्मी० २। १५। ५) व्याघ्रचर्म समूचा होना चाहिये। यथा—'**समग्रं व्याघ्रचर्म च।**' (वाल्मी० २। ३। ११) चर्मपर सप्तद्वीपोंका नक्शा बनाया जाता है, फिर उसे सिंहासनपर रखकर उसपर राजाको बिठाकर राज्याभिषेक किया जाता है] *'बस्त्र बहु भाँती'*—बहुत प्रकारके ऊनी और रेशमी दिव्य वस्त्र पहननेके लिये। ऊनी और रेशमी

*चमर—बाबा रघुनाथदासजी, मा०दी०।

दोनों प्रकारके वस्त्र अभिषेकमें पहने जाते हैं, इसीसे दोनोंको लिखा। (छ) *'मनिगन मंगल बस्तु''* मङ्गल देहलीदीपक है। मणिगण भी माङ्गलिक हैं] माङ्गलिक मणिगण यथा—*'सोहत मौरु मनोहर माथें। मंगलमय मुकता मुनि गाथें॥'* (१।३२७।१०) में देखिये।

(ज) यहाँ सुतीर्थ जल, औषधादि जो पदार्थ गिनाये गये वे सब उसी क्रमसे वर्णन किये गये हैं जिस क्रमसे वे काममें लाये जाते हैं। प्रथम स्नानके लिये तीर्थोंका जल कहकर तब औषधादिको कहा, क्योंकि प्रथम तीर्थोंके जलसे स्नान होकर फिर ओषधि-स्नान होता है। तत्पश्चात् वस्त्र पहनाकर सिंहासनपर व्याघ्रचर्मपर बिठाया जाता है, तब चँवर डुलाया जाता है। वस्त्र पहन चुकनेपर आभूषण धारण किये जाते हैं, अतएव कहा कि *'मनिगन मंगल बस्तु अनेका'* बताये जो अभिषेकके समय काम आते हैं।

बेद बिदित कहि सकल बिधाना। कहेउ रचहु पुर बिबिध बिताना॥ ५॥
सफल रसाल पूँगफल केरा। रोपहु बीथिन्ह पुर चहुँ फेरा॥ ६॥
रचहु मंजु मनि चौकें चारू। कहहु बनावन बेगि बजारू॥ ७॥
पूजहु गनपति गुरु कुलदेवा। सब बिधि करहु भूमिसुर सेवा॥ ८॥
दो०—ध्वज पताक तोरन कलस सजहु तुरग रथ नाग।
सिर धरि मुनिबर बचन सबु निज निज काजहिं लाग॥ ६॥

शब्दार्थ—**'बिदित'**=प्रकट, प्रसिद्ध,विहित। **'बिधाना'** (विधान)=रीति, विधि। **'रचहु'**=तानो, क्योंकि वितान ताने जाते हैं, यथा—*'बिबिध बितान दिये जनु तानी'*; रचना करो, चित्र-विचित्र बनाओ। **'वितान'**=मण्डप, चँदोए। **'रसाल'**=आम। **'पूँगफल'**=सुपारी। **'केरा'**=केला। **'सफल'**=फलयुक्त, फल लगे हुए। **'रोपहु'** (आरोपण)=लगाओ। **'बीथि'**=गली, मार्ग, रास्ता। **'चहुँ फेरा'**=चारों ओर। **'मंजु'**=सुन्दर। **'चारु'**=सुन्दर। **'बनावन'**=सँवारने, सजानेको। **'बजारू'**=बाजार, हाट। यह फारसी शब्द है। **'गनपति'**=गणोंके स्वामी, गणेशजी। **'भूमिसुर'**=महिसुर, भूदेव, ब्राह्मण। **'ध्वजा'**=ऊँचे झण्डे। **'पताका'**=छोटी झण्डियाँ। विशेष (१। २९६। ७), (१। ३४४। ६)में देखिये। 'तोरण'—इसके दो अर्थ हैं, १-वन्दनवार; २-फाटक। 'फाटक' यहाँ अधिक सुसङ्गत अर्थ जान पड़ता है क्योंकि वन्दनवारका सजाना कुछ अधिक सङ्गत नहीं जान पड़ता। 'फाटक' आज भी बनाकर सजाये जाते हैं। बैजनाथजी और दीनजीने भी यही अर्थ किया है। ये वे फाटक हैं जो राज्याभिषेकके समय राजाकी सवारी जानेके मार्गमें थोड़ी-थोड़ी दूरपर बनाये जाते हैं। अथवा, दोनों अर्थ यहाँ ले लें। **'तुरग'**=तुरङ्ग, घोड़ा। **'नाग'**=हाथी।

अर्थ—श्रीवसिष्ठजीने वेदोंमें कहा हुआ सब विधान कहकर तब कहा कि नगरको अनेक प्रकारके चँदोओं, मण्डपोंसे सजाओ अर्थात् चित्र-विचित्र चँदोए ताने जायँ॥ ५॥ आम, सुपारी और केलेके वृक्ष नगरमें (भीतर-बाहर) चारों ओर गलियोंमें लगाओ॥ ६॥ सुन्दर मणियोंसे सुन्दर चौके पूरो। बाजार शीघ्र ही सजानेको कह दो॥ ७॥ गणेश, गुरु और कुलदेवताकी पूजा करो। ब्राह्मणोंकी सब प्रकारसे सेवा करो॥ ८॥ ध्वजा, पताका, तोरण, कलश, घोड़े, रथ और हाथी सजाओ। मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजीके 'सब' वचनोंको शिरोधार्यकर (अर्थात् माथा नवाकर मानना जताकर) सब लोग अपने-अपने काममें लगे॥ ६॥

टिप्पणी—१ *'बेद बिदित कहि''* इति। (क) अर्थात् लोक और वेद दोनों रीति बरतना है इससे दोनों विधि कहना है। वेद-विधि ऊपर कह चुके, अब यहाँसे लोक-विधि बताते हैं। मानस-सरयू-रूपकमें कहा है कि *'लोक बेद मत मंजुल कूला'* उसीका निर्वाह ग्रन्थभरमें है। (ख) **'रचहु पुर'** से प्रथम पुर रचनेको कहा, फिर साथ ही रचनेकी विधि बतायी कि विविध बितान बनाओ, सफल रसालादि रोपो, इत्यादि। (ग) *'सफल रसाल पूँगफल केरा।'* ये फलसंयुक्त लगाये जाते हैं। मङ्गल-अवसरोंपर मनोरथकी सफलताप्राप्तिके विचारसे ऐसा करनेकी रीति है, यथा—*'सफल पूगफल कदलि रसाला। रोपे बकुल कदंब*

तमाला॥' (१। ३४४) (घ) '*बीथिन्ह चहुँ फेरा*' कहकर जनाया कि पुरके भीतर गलियोंमें और पुरके बाहर चारों तरफ सफल वृक्ष लगाये जावें।

टिप्पणी २ (क) '*रचहु मंजु मनि चौकें*……' इति। मंजु मणि=सुन्दर मणि। इससे गजमुक्ता सूचित किया, यथा—'*बीथी सकल सुगंध सिंचाई। गजमनि रचि बहु चौक पुराई*'॥' (७। ९) (विविध प्रकारकी मणियोंसे भी चौकें पूरी जाती हैं। रंग-बिरंगके मणियोंके चूर्णसे रची जाती हैं।) बहुत चौकें पूरनेको कहीं, इसीसे चौकें बहुवचन पद दिया। पुरमें गली-गली, द्वार-द्वारपर, बाजारमें सर्वत्र मङ्गल-अवसरोंपर चौकें पूरी जाती हैं, यथा—'*सींची सुगंध रचीं चौकें पुर आँगन गलीं बजार।*' (गी०) अत: '**चौकें**' शब्द दिया। '**चारु**' और '**रचहु**' से सूचित किया कि चौकें अनेक प्रकारकी और अत्यन्त सुन्दर पूरी जायँ, यथा—'**चौकें चारु** *सुमित्रा पूरीं। मनिमय बिबिध भाँति अति रूरीं॥*'(८। ३) (ख) '*कहहु बनावन बेगि बजारू*'—भाव कि बाजार बड़ा है और समय कम है, इसीसे कहा कि उसे '*बेगि*' शीघ्र ही सजानेका प्रबन्ध करो, विलम्ब न होने पावे (इससे अनुमान होता है कि उनका आशय यह हो कि बाजार पंचायती है, अपने-अपने द्वारपर सब बाजारवाले सजावट कर लें, वहाँ सबका काम है। (प्र०सं०)

टिप्पणी—३ '*पूजहु गनपति गुरु कुल देवा।*……' इति (क) गणेशजी प्रथम पूज्य हैं, अत: उन्हें प्रथम कहा। चौकें रचनेको कहकर तब गणेशका पूजन करनेको कहा। भाव कि प्रत्येक चौकपर गणेशजीका कलश स्थापित करके उनका पूजन करो। [चौकपर वा उसके समीप कलश रहता है, वहीं गणेशजीका पूजन होता है। यही विघ्नकारक गणोंके अधिपति हैं, विघ्नविनाशक हैं, इसीसे प्रथम कहा जिसमें विघ्न न होने दें। गुरु श्रीवसिष्ठजी हैं। '*कुलदेवा*'—श्रीरङ्गजी इस कुलके इष्टदेव हैं, यथा—'*निजकुल इष्टदेव भगवाना। पूजा हेतु कीन्ह अस्नाना॥*' (१। २०१) (विशेष १। २०१। २ में देखिये)। गुरु वसिष्ठ कुलदेवके समान पूज्य हैं, यह पूर्व बताया जा चुका है, यथा—'*गुरु बसिष्ठ कुलपूज्य हमारे।*' (७। ८) इससे उनको कुलदेवके साथ कहा]। (ख)—'*सब बिधि करहु भूमिसुर सेवा*' इति। '*सब बिधि*'—अर्थात् चरण प्रक्षालन करो, पादोदकसे घरोंको पवित्र करो, चरणोदक लो, भोजन कराओ, द्रव्य दो, वस्त्र और आभूषण पहनाओ, चरण-सेवा करके विनती करो (तात्पर्य कि उनको दान-मान-सम्मानसे सन्तुष्ट करो)—यह सब भाव दरसानेके लिये '*करहु भूमिसुर सेवा*' कहा। 'सेवा' शब्द इनके साथ दिया, देवताओंके साथ नहीं, उनका 'पूजन' करनेको कहा। '*सब बिधि*' से जनाया कि ब्राह्मणोंका सम्मान सबसे श्रेष्ठ है। [गणेशादि देवताओंका पूजन कहा। क्योंकि वे परोक्ष हैं और विप्रोंकी शुश्रूषा कही, क्योंकि ये प्रकट हैं, प्रत्यक्ष हैं। (पं०) इनको दान-मानसे सन्तुष्ट करनेको कहा; क्योंकि इनकी प्रसन्नतासे मंगल होता है, यथा—'*मंगलमूल बिप्र परितोषू।*' (१२६। ४) (प्र० स०)] '*भूमिसुर*' की सेवा करनेको कहा, क्योंकि श्रीरामजीको 'भूमिपति' करना चाहते हैं।

टिप्पणी ४—'*ध्वज पताक तोरन*……' इति। (क) '*बेगि*' और '**सजहु**' का अन्वय ध्वज, पताक, तोरण, कलश, तुरग, रथ और नाग सबके साथ है। ['*तुरग रथ नाग*'—रथको बीचमें देकर घोड़े, हाथियों और घोड़े जुते रथ तथा गजरथ इन सबोंको सजानेको कहा। चार घोड़ेवाला रथ भी काममें आता है यथा—'**चतुरश्वो रथः।**' (वाल्मी० २। १४। ३६) सुन्दर लक्षणोंवाला मत्त हाथी भी चाहिये, यथा—'**गजं च शुभलक्षणम्।**' (वाल्मी० २। ३। १०) '**मत्तश्च वरवारणः।**' (२। १४। ३६) '*तोरण*' अर्थात् फाटक सजाये जावें। पुन:, तोरण अर्थात् बन्दनवार द्वारोंपर लगाये जायँ। ध्वजाएँ और पताकाएँ ऊँची अटारियों, देवमन्दिरों, गलियों, मार्गों, बाजारों, गृहस्थोंके भवनों, सभाओं, वृक्षों आदिमें फहरानेको कहा। यथा—'**सिताभ्रशिखराभेषु देवतायतनेषु च। चतुष्पथेषु रथ्यासु चैत्येष्वट्टालकेषु च॥**'' (वाल्मी० २।६। ११—१३] (ख)—'*सिर धरि मुनिबर बचन*' वचनोंको शिरोधार्यकर अर्थात् उनकी आज्ञाका पालन परम धर्म समझकर। यथा—'*सिर धरि आयसु करिय तुम्हारा। परम धरमु यह नाथ हमारा॥*' (१। ७७। २) देखिये। (ग) '*सब निज निज काजहि लाग*'—'*सब*' और '*निज निज*' से सूचित किया कि बहुत-से लोगोंको आज्ञा दी गयी। यथा—'**आदिदेशाग्रतो राज्ञः स्थितान्युक्तान्कृताञ्जलीन्।**' (वाल्मी० २। ३। ८) अर्थात् हाथ जोड़कर आगे

आये हुए राजाके भृत्योंको आज्ञा दी। सबको उनके-उनके अधिकारयोग्य पृथक्-पृथक् कार्यकी आज्ञा दी गयी, यह बात आगे और भी स्पष्ट कर दी गयी है। यथा—*'जो मुनीस जेहि आयसु दीन्हा। सो तेहि काजु प्रथम जनु कीन्हा॥'* (घ) *'काजहि लाग'* से जनाया कि तुरत काम करने लगे, किंचित् विलम्ब न किया।

☞ अभिषेकका मुहूर्त बहुत निकट है, इसीलिये सामग्री जुटानेके लिये शीघ्रता करनेकी आज्ञा दी। इसी प्रकार उत्तरकाण्डमें भी तिलकका मुहूर्त बहुत निकट था, इसीसे वहाँ भी सामग्री तुरत जुटायी गयी। यथा—*'गुरु बसिष्ठ द्विज लिए बोलाई। आज सुघरी सुदिन समुदाई॥'''अब मुनिबर बिलंब नहिं कीजै। महाराज कहँ तिलक करीजै॥'* (७। १०) *'रथ अनेक बहु बाजि गज तुरत सँवारे जाइ।'* (७। १०), *'सासुन्ह सादर जानकिहि मज्जन तुरत कराइ।'* (७।११), *'प्रभु बिलोकि मुनि मन अनुरागा। तुरत दिब्य सिंघासन माँगा॥'* (७। १२)

जो मुनीस जेहि आयसु दीन्हा। सो तेहि काज प्रथम जनु कीन्हा॥ १॥
बिप्र साधु सुर पूजत राजा। करत रामहित मंगल काजा॥ २॥
सुनत राम अभिषेक सुहावा। बाज गहागह अवध बधावा॥ ३॥

शब्दार्थ—**हित**=लिये, प्रेमके कारण। **मंगल**=कल्याण करनेवाले। **सुहावा**=प्रिय लगनेवाला, सुहावना, आनन्द-मंगलका देनेवाला, सुन्दर। **गहगह**=(गहा=गहरा। गहगहे, गहागह गहगह क्रियाविशेषण है। गह-गहाना=प्रफुल्लित होना, प्रसन्न होना,) घमाघम, धमाधम, बहुत अच्छी तरह, बहुत जोरसे, बड़ी प्रफुल्लताके साथ। **बधावा** (सं० वर्द्धन, हिं० बढ़ती, बढ़ाई, बधाई) जन्म, विवाह आदि शुभ अवसरों, मङ्गल-कार्योंके उपलक्षमें जो गाना-बजाना, मुबारकबाद इत्यादि लोगोंकी तरफसे होता है उसे 'बधावा' कहते हैं। इसके साथ प्रायः कुछ माङ्गलिक भेंट मिठाई, फल, आभूषण इत्यादि भी लोग बाजा बजवाते हुए ले जाते हैं इसीसे *'बधाई बजना'* मुहावरा हो गया।

अर्थ—मुनीश्वर श्रीवसिष्ठजीने जिसको जो आज्ञा दी, उसने वह काम (इतनी शीघ्रतासे कर डाला) मानो पहलेसे ही कर रखा था॥ १॥ राजा ब्राह्मण, साधु और देवताओंको पूज रहे हैं। श्रीरामचन्द्रजीके लिये ये सब मङ्गलकार्य कर रहे हैं॥ २॥ श्रीरामचन्द्रजीके आनन्दप्रद राजतिलककी खबर सुनते ही अवधमें बधाइयाँ धमाधम बजने लगीं॥ ३॥

नोट—१ *'प्रथम जनु कीन्हा'*— मानो पहले ही कर रखा था। यह मुहावरा है; बहुत शीघ्र कर लेनेके भावमें प्रयुक्त होता है। दूसरे सबके हृदयमें प्रथमसे ही उत्साह भरा हुआ है, उत्साहमें कार्य शीघ्र होता ही है। पुनः, एक तो राजाकी आज्ञा और फिर गुरुकी भी आज्ञा कि *'बेगि'* करो। उस आज्ञाको कैसे शिरोधार्य और पालन किया, इससे सेवकोंकी श्रद्धा और सावधानता सूचित होती है। वाल्मीकीयमें भी मुनिका भृत्योंको आज्ञा देना कहकर दूसरे ही श्लोकमें कहा गया है कि उन्होंने राजाके पास आकर उनसे कहा कि सब काम कर लिया गया—'**कृतमित्येव चाब्रूतामभिगम्य जगत्पतिम्।**' (२।३।२१) (ख) देखिये, यहाँ पूज्य कविने भी कैसी शीघ्रता लेखनीसे दरसाई है। एक ही अर्धालीमें वे मुनिकी आज्ञा एक चरणमें कहकर दूसरे ही चरणमें आज्ञाका पालन कह दिया। उसके विस्तृत वर्णनमें वे भी समय नहीं लगाते। *'प्रथम जनु कीन्हा'* से सब कह दिया और चले। (ग) आज्ञाका झटपट पालन करना उत्प्रेक्षाका विषय है, राजा और गुरुजनोंके आज्ञानुसार कार्य करना 'उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा' है। आज्ञाके पहले ही काम कर रखा हो, इस कथनमें 'अत्यन्तातिशयोक्ति अलङ्कार' है।

नोट २—कार्यसम्पादनमें बड़ी फुर्ती है, क्योंकि दूसरे ही दिन दशमी पुष्यको अभिषेक होनेवाला था। अतः आठों मन्त्रियोंने अपने-अपने कार्यमें बड़ी शीघ्रता कीं। मालूम होने लगा कि ये सब कार्य पहलेसे ही सम्पादित हैं। पन्द्रहइयोंमें होनेवाले कार्योंको कुछ घंटोंमें कर दिखाया। इसीसे मन्थराको यह कहनेका अवसर मिला कि *'भयउ पाख दिन सजत समाजू।'* (पं०, वि०त्रि०)।

टिप्पणी—१ *'जो मुनीस······'* इति। (क) सेवकोंने राजाकी *'बेगि करहु सोइ सोइ'* इस आज्ञाका प्रतिपालन किया, यह *'जो मुनीस जेहि······कीन्हा'* से सूचित कर दिया। (ख) गुरुकी भी आज्ञा है कि शीघ्र करो, अतएव इन्होंने बहुत शीघ्र सब काम कर दिया। (ग) *'बिप्र साधु सुर पूजत राजा······'* इससे जनाया कि यह आज्ञा राजाके लिये हुई थी जो कहा था कि *'पूजहु गनपति······'* उस आज्ञाका पालन राजाने किया। विप्र, साधु और सुरका पूजन मङ्गल-कार्य है। यह सब श्रीरामजीके लिये करते हैं जिसमें उनका मङ्गल हो, यथा—*'मंगलमूल बिप्र परितोषू।'* (१२६। ४) *'मुदमंगलमय संत समाजू।'* (१। २) (घ) राजाने दूसरोंको आज्ञा दी थी कि *'रामराज-अभिषेक हित बेगि करहु सोइ सोइ',* उसका प्रतिपालन राजा अपने कर्तव्यसे भी दिखा रहे हैं। इस अर्धालीका सम्बन्ध *'रामराज-अभिषेक हित'* से है।

टिप्पणी—२ *'सुनत राम अभिषेक······'* इति। (क) रामराज्य सबको सुन्दर लगता है, यह स्वयं सुन्दर है, सबको इसके होनेकी लालसा थी, वे महेशको मनाते ही थे, वह अभिलाषा पूरी हुई, यह समझकर *'बाज गहागह अवध······'*। *'अवध'* से जनाया कि समस्त अयोध्यामें घर-घर बधाई बज रही है। (ख) प्रथम पुरकी रचना हुई, इससे पुरवासियोंका हर्ष प्रथम कहा। (यहाँतक नगरमें बाहरका वर्णन हुआ।) आगे राजमहलका हाल लिखते हैं।

रामसीय तनु सगुन जनाए। फरकहिं मंगल अंग सुहाए॥ ४॥
पुलकि सप्रेम परसपर कहहीं। भरत आगमनु सूचक अहहीं॥ ५॥
भए बहुत दिन अति अवसेरी। सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी॥ ६॥

शब्दार्थ—**जनाए**= (जनाना सकर्मक क्रिया है। जनाना=जताना, सूचना देना) बताया कह रहे हैं—*'फरकि बाम अंग जनु कहि देहीं।'* (५। ३५। ६) **परसपर** (परस्पर)—आपसमें, एक-दूसरेसे। **सूचक**=सूचना या खबर देनेवाले। **अवसेरी**=अवसेरु शब्द संस्कृतका है, यह कई अर्थोंमें प्रयुक्त होता है—(१) देर, विलम्ब, उलझन, अटकाव यथा—*'महरि पुकारत कुँअर कन्हाई। माखन धरेउ तिहारे कारन आजु कहाँ अवसेर लगाई', 'भयो मो मन माधव को अवसेर। मौन धरे मुख चितवत ठाढ़ी ज्वाब न आवै फेर। तब अकुलाइ चली उठि बनको बोले सुनत न टेर······'* (सूर)। (२) चिन्ता, व्यग्रता, उचाट, यथा—*'आजु कौन धौं कहाँ चरावत गाय कहाँ भई अबेर। बैठे कहाँ सुधि लेहु कौन बिधि ग्वारि करत अवसेर', 'दूती मन अवसेर करै। श्याम मनावन मोहिं पठायउ यह कतहूँ चितवै न टरै', 'अब ते नयन गये मोहिं त्यागि। इन्द्री गई गयो तन ते मन उनहुँ बिना अवसेरी लागि'*—सूर। (३) हैरानी, दुःख, बेचैनी यथा—*'दिन दस गये चलहु गोपाल। गाइनके अवसेर मिटावहु लेहु आपने ग्वाल।······'* सूर। (श०सा०) (४) प्रतीक्षा, इन्तजार। यहाँ 'विलम्ब, चिन्ता, बेचैनी और प्रतीक्षा'—ये सभी अर्थ प्रसङ्गके अनुकूल हैं। **प्रतीति**=विश्वास। **केरी**=की।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी और श्रीसीताजीके शरीर शकुनकी सूचना देते हैं (शरीरमें शकुन हो रहे हैं)। उनके सुन्दर शुभ अङ्ग फड़क रहे हैं*॥ ४॥ पुलकित होकर वे दोनों प्रेमसहित एक-दूसरेसे कहते हैं कि ये समस्त सगुन भरतके आगमनके सूचक हैं (आनेकी खबर दे रहे हैं)॥ ५॥ बहुत दिन होनेसे बड़ी चिन्ता थी। सगुन प्यारेके मिलनेका दृढ़ विश्वास दिलाते हैं॥ ६॥

---

* 'देवदत्तः ओदनं पचति' अर्थात् देवदत्त चावल पकाता है। 'देवदत्तः किं ओदनं पचति' 'ओदनं तु स्वयमेव पच्यते' अर्थात् देवदत्त क्या चावल पकावेगा, चावल स्वयं पकता है। इसी तरह 'सगुन जनाये' अर्थात् सगुन स्वयं जना अर्थात् प्रकट हो रहे हैं वा सगुन स्वयं जनाये अर्थात् प्रकट हुए।

दीनजी—(भावार्थ)—राम और सीताजीके शरीरमें सगुन बतलाकर (कोई अच्छा कार्य होनेवाला है) शुभ अङ्ग फड़कते हैं (यह फड़कना दम्पतिको) अच्छा लगा।

टिप्पणी—१ *'रामसीय तनु सगुन जनाए।…'* इति। (क) शकुनने जनाया कि आपके मनकी बात होना ही चाहती है। मनकी बात यह है कि वनका राज्य मिले जहाँ हमको बड़ा भारी कार्य करना है, जिसके लिये अवतार लिया है। यथा—*'पिता दीन्ह मोहि कानन राजू। जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू॥'* (५३। ६) (ख) *'सगुन जनाए'* कहकर दूसरे चरणमें बताते हैं कि शकुन क्या बता रहे हैं। वे बताते हैं कि आपके मङ्गल अङ्ग फड़क रहे हैं। आपका मनोरथ पूर्ण होगा, आप राज्यको त्यागकर वनको जायँगे और देवकार्य करेंगे। (ग) *'तनु सगुन जनाए'* इति। तनमें शकुन प्रकट होनेका भाव कि जब अवधसे बारात जनकपुरको चली थी तब जो शकुन हुए थे, यदि वे ही होवें तो सबकी दृष्टि उनपर पड़ेगी और नियम है कि जिस-जिसकी दृष्टि शकुनपर पड़े उसका मनोरथ सफल हो, पर अवधवासियोंका मनोरथ सफल नहीं होनेको है; अतएव इस समय उस प्रकारसे शकुन प्रकट न हुए। श्रीराम-जानकीजीको शरीरके शकुन हुए, बाहरके शकुन न हुए। (घ) *'मंगल अंग'*—श्रीरामजीका मङ्गल अङ्ग दाहिना अङ्ग है और श्रीसीताजीका मङ्गल अङ्ग बायाँ अङ्ग है। यथा—*'फरकहिं सुभद अंग सुनु भ्राता।'*(१। २३१। ४) *'मंजुल मंगल मूल बाम अंग फरकन लगे।'* (१। २३६)

टिप्पणी—२ *'पुलकि सप्रेम परसपर कहहीं।…'* इति। (क) भक्तके मिलापका स्मरण होनेसे तन, मन, वचन—तीनोंसे सुखी हुए। पुलक तनका, प्रेम मनका और *'परसपर बचन कहहीं'* से वचनका सुखी होना कहा। 'परस्पर'—अर्थात् श्रीरामजी श्रीजानकीजीसे कहते हैं कि हमारे दक्षिण अङ्ग फड़क रहे हैं और श्रीसीताजी श्रीरामजीसे कहती हैं कि हमारे वाम अङ्ग फड़क रहे हैं। (ख) *'भए बहुत दिन…'* इति। अर्थात् वे कभी इतना बाहर नहीं रहते थे, किस कारणसे नहीं आये। बारह वर्ष हो गये। [वाल्मीकीयमें लिखा है कि विवाहके बाद जनकपुरमें अश्वपति केकयराजके पुत्र युधाजित् पिताकी आज्ञासे भरतजीको ले जानेके लिये आये थे। शत्रुघ्नजीका भरतजीमें प्रेम होनेके कारण भरतजी उनको भी अपने साथ ले गये थे। मामा युधाजित्के उत्तम सत्कारोंसे सत्कृत होनेसे तथा उनके द्वारा पुत्रस्नेहसे लालित होकर इतने वर्ष वहाँ रह गये। यथा—'**स तत्र न्यवसद् भ्रात्रा सह सत्कारसत्कृतः। मातुलेनाश्वपतिना पुत्रस्नेहेन लालितः…।**' (वाल्मी० २। १। २-३)(ग) *'सगुन प्रतीति भेंट प्रिय'*—शकुनसे प्रियके भेंटकी प्रतीति होती है, यथा—*'सगुन बिचारि धरी उर (मन) धीरा। अब मिलिहहिं कृपाल रघुबीरा॥'* (६। ६। १००) *'मोरे जिय भरोस दृढ़ सोई। मिलिहहिं राम सगुन सुभ होई॥'*(७। १। ८) सगुन भेंटका विश्वास दिलाते हैं।

नोट—१ प्रेम ऐसी ही वस्तु है। साधारण ही देखा जाता है कि शुद्ध प्रेम होनेसे लोग प्रियतमका हाल जान लेते हैं, यह तो प्राकृत मनुष्योंमें ही देखा जाता है फिर भला इनका तो कहना ही क्या? भरतजीसे अब अवश्य भेंट होगी। इसी प्रकार उत्तरकाण्डमें प्रिय भरतजीके दक्षिण अङ्ग बारम्बार फड़ककर शकुन जना रहे हैं और उनको प्रतीति होती है कि श्रीरामचन्द्रजी अवश्य मिलेंगे।

इस ग्रन्थमें जहाँ-तहाँ कई स्थलोंपर शुभ अङ्गोंका फड़कना वर्णित हुआ है, यथा—पुष्पवाटिकामें श्रीसीताजीके आगमनपर रामचन्द्रजीने कहा है, *'फरकहिं सुभग अंग सुनु भ्राता।'* (१। २३१) पुनः गौरि अशीष पानेपर श्रीसीताजीके *'मंजुल मंगल मूल बाम अंग फरकन लगे'* और उत्तरकाण्डमें *'भरत नयन भुज दच्छिन फरकत बारहिं बार'* एवं सुन्दरकाण्डमें लङ्काको जाते समय—*'प्रभु पयान जाना बैदेहीं। फरकि बाम अंग जनु कहि देहीं॥'* (५। ३५) इन स्थलोंपर शुभाङ्गोंके फड़कनेका शुभ फल प्रिय-मिलाप हुआ। तथा यहाँ भी श्रीसीतारामजीके शुभाङ्गोंका फल वही दिखाया गया। इससे यह जान पड़ता है कि शुभाङ्गोंके फड़कनेका प्रायः यही फल होता है।

नोट २—पंजाबीजी लिखते हैं कि शुभ अङ्गोंके फड़कनेका फल वनवास हुआ। इसे शुभ शकुन इससे कहा कि जिस कामका परिणाम शुभ हो वह श्रेष्ठ कहलाता है। सो अवधिमात्रके लिये राज्य-त्याग और वनवास मिष रावणको सकुटुम्ब मारकर रघुनाथजीको त्रैलोक्याधिपति होना है, इससे भी यह फल शुभ है। और, जो मूलमें इसका फल प्यारेका मिलाप कहा सो भी शुभ ही सगुन है क्योंकि संत भगवान्को प्यारे हैं। वनमें अनेक संत मिलेंगे ही।

भरत सरिस प्रिय को जग माहीं?। इहइ सगुन फल दूसर नाहीं॥ ७॥
रामहिं बंधु सोच दिन राती। अंडन्हि कमठ हृदउ* जेहि भाँती॥ ८॥

शब्दार्थ—'**सरिस**'=सदृश, समान। '**इहइ**'=बस यही। '**कमठ**'=कछुआ। '**हृदउ**'=हृदयमें।

अर्थ—भरतके समान हमें संसारमें कौन प्रिय है? सगुनका फल बस यही है और कुछ नहीं॥ ७॥ श्रीरामचन्द्रजीको रात-दिन भाईकी चिन्ता रहती है, जैसे कछुएके हृदयमें अपने अण्डोंकी॥ ८॥

नोट—१ *'सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी'* के प्रिय शब्दमें अतिव्याप्ति है, बहुत-से लोग प्रिय हैं, न जाने किससे भेंट होगी। इस अतिव्याप्तिको मिटानेके लिये फिर कहते हैं कि *'भरत सरिस को प्रिय'* भरत सरिस प्रिय और दूसरा कौन है? यही कौशल्याजी, वसिष्ठजी, निषादराज, भरद्वाजजी आदिका भी मत है। यथा—*'मातु"।' कहति रामप्रिय तात तुम्ह सदा बचन मन काय॥'* (१६८) *'राम प्रानहु तें प्रान तुम्हारे। तुम्ह रघुपतिहि प्रानहु तें प्यारे॥ १॥ 'तात भरत अस काहे न कहहू। प्रान समान राम प्रिय अहहू॥'* (१८४। ५) (ये माता, मन्त्री, गुरु आदि सभीने कहा है), *'तेहि राति पुनि पुनि करहिं सादर सरहना रावरी॥ तुलसी न तुम्ह सो राम प्रीतमु कहत हौं सौंहें किए॥'* (२०१) *'सुनहु भरत रघुबर मन माहीं। प्रेमपात्र तुम्ह सम कोउ नाहीं॥'* (३) *"'''निसि सब तुम्हहिं सराहत बीती॥'* (४) *'तुम्ह पर अस सनेह रघुबर कें। सुख जीवन जग जस जड़ नर कें॥'* (६) (दो० २०८) *'भरत सरिस को राम सनेही। जग जपु राम राम जप जेही॥'* (२१८। ७)

नोट—२ *'इहइ सगुन फल दूसर नाहीं'* इति (क) श्रीरामजी इस शकुनका फल यही निश्चय करते हैं। इसीसे राज्याभिषेक न हुआ, भरतसे भेंट हुई। (पण्डित रामकुमारजी) पंजाबीजीका मत है कि इन शब्दोंसे सर्वज्ञता सूचित की कि अभी राज्य न होगा, भरतजीसे मिलाप होगा। श्रीनंगे परमहंसजी कहते हैं कि 'वस्तुतः जिस कार्यके लिये अवतार लिया उसकी सिद्धिकी सूचना शकुनसे हो रही है। परन्तु श्रीरघुनाथजीने माधुर्यमें इसका भाव 'भरतागमन' लगाया। मयङ्ककार कहते हैं कि 'राजा तिलकका साज सज रहे हैं और सर्वत्र उत्सव हो रहा है; अतएव यह शकुन राज्य-प्राप्ति-सूचक होना चाहिये था, श्रीरामजी इसका फल भरतागमन निश्चित करते हैं, क्योंकि केकयराजसे प्रतिज्ञाबद्ध होनेसे युवराज्य श्रीभरतको मिलना चाहिये, राजा अन्याय कर रहे हैं, यह जानकर श्रीरामजीने राजाका त्याग किया और इसीसे राज्याभिषेकको भी त्याग दिया; अतएव इस शकुनका फल भरतमिलाप ही निश्चित किया।

टिप्पणी—१ *'रामहिं बंधु सोच दिन राती'''* इति। (क) अतिप्रियके वियोगमें रात-दिन सभीको शोच रहता ही है। श्रीभरतजी रामजीको अतिप्रिय हैं, जगन्मात्रमें इनके समान प्रिय कोई नहीं।' (यथा—*'प्रेम पात्र तुम्ह सम कोउ नाहीं'*)। अतएव श्रीरामजीको उनका शोच दिन-रात बना रहता है। (नोट १ में रात-रातभर उनके स्मरणके उदाहरण दिये गये हैं) (ख)—*'अंडन्हि कमठ'* का दृष्टान्त देकर जनाया कि जैसे कछुवेके अण्डेका अवलम्ब कछुयेकी सुधपर है, यदि कमठको उसकी सुरति बिसर जाय तो अण्डा मर जाय, वैसे ही भरतजीको श्रीरामकृपाका ही अवलम्ब है (यथा—*'आपन जानि न त्यागिहहिं मोहि रघुबीर भरोस॥'*) (१८३)। यदि श्रीरामजी क्षणभर कृपा भुला दें तो भरतजी जीवित ही न रहें, उनका मरण हो जाय। इसीसे रात-दिन उनका स्मरण रहता है। ☞ इससे श्रीभरतजीकी विलक्षण शरणागति सूचित की। (प्रथम साधारण बात कहकर फिर विशेषसे समता दिखानेसे यहाँ 'उदाहरण अलङ्कार' है।)

नोट—३ *'अंडन्हि कमठ हृदय'''''''* इति। यह बड़ा अपूर्व दृष्टान्त है, समझते ही बनता है। कछुवा अपने अण्डे पानीसे बाहर रेतमें रखता है और सुरतिसे उनका सेवन करता है, वैसे ही यहाँ सूचित करते हैं कि लवमात्र भी भरतजीकी सुरति इनको नहीं भूलती। यद्यपि वे ननिहाल-(केकय देश-) में हैं और ये अवधमें, कहाँ काश्मीर या काकेशस और कहाँ अवध। केवल रामकृपा ही भरतजीका पालक है। प्रायः

* 'हृदउ'—राजापुर और पं० रामगुलाम द्विवेदी; भागवतदासजी, काशी, रा० प०। 'हृदय' (ना०प्र० सभा)।

दो प्रकारकी प्रीति और कही गयी है, एक मर्कटकी, दूसरे मार्जार-(बिल्ली-) की। ज्ञानियोंके लिये मर्कटकी उपमा और भक्तोंके लिये मार्जार-न्यायकी प्रीति कही जाती है। इन दोनोंसे बिल्लीकी प्रीति उत्तम है, पर, कमठका दृष्टान्त इन दोनोंसे उत्तमतर अधिक श्रेष्ठ है। क्योंकि बिल्ली भी अपने पेटके लिये जब बाहर जाती है तब बच्चोंको भूल जाती है। यह दृष्टान्त विनयमें भी आया है। यथा—'*कुटिल कर्म लै जाइ मोहि जहँ जहँ अपनी बरियाई। तहँ तहँ जनि छिन छोह छाँड़िए कमठ अंडकी नाईं॥*' (१०३)

विज्ञानानुसार रेतमें दबे हुए अण्डे सूर्यकी गर्मीसे पक्व हो जाते हैं और बच्चे पुष्ट होकर स्वयं जलमें प्रवेश कर जाते हैं।

दोहा—एहि अवसर मंगल परम सुनि रहसेउ रनवास।
सोभत लखि बिधु बढ़त जनु बारिधि बीचि बिलास॥ ७॥

शब्दार्थ—**परम मंगल**=बहुत बड़ा मङ्गल कार्य, परम मङ्गलोत्सव। **रहसेउ**=प्रेमोत्साहसे भर गया, हर्षित हुआ। दो० ४ (१) में देखिये। ***रनिवास*** (रनवास=रानी+आवास)=राजमहल। '**बारिधि**'=समुद्र। **बीचि**=तरंग, लहर। **बिलास**=खेल, उठान, अठखेलियाँ।

अर्थ—इस अवसरपर यह परममङ्गल (होनेवाला है यह समाचार) सुनकर रनवास प्रेमोत्साहसे भर गया अर्थात् रनवास बहुत हर्षित हुआ।) मानो चन्द्रमाको बढ़ते हुए देखकर समुद्रमें लहरोंका विलास शोभा दे रहा है। वा चन्द्रमाको सुशोभित देखकर समुद्रकी लहरोंका विलास (उठना) बढ़ता है॥ ७॥

नोट—१ उत्तरार्द्धका अर्थ दो तरहसे किया गया है। पहला अर्थ श्रीशुकदेवलालजी, प्रोफे० लाला भगवानदीन और विनायकी टीकाकार इत्यादिका है। पं० रामकुमारजी, बैजनाथजी, रा० प्र० का और प्रोफे० रामदास गौड़जी इत्यादि दूसरेको उत्तम कहते हैं।

टिप्पणी—१ (क) रामराज्याभिषेक ही 'परम मङ्गल है'। (यथा—'*भूप सुमंगल बचन सुनाए।*''*करहु हरषि हिय रामहि टीका।*', '*जगमंगल भल काजु बिचारा*') इसे सुनकर रनवास हर्षित हुआ। (मुख्य तात्पर्य इतना ही है पर इसके भावको हृदयङ्गम करनेके लिये कवि अपनी कल्पनासे बलपूर्वक पाठकोंका ध्यान समुद्रकी उस तरंगमालाकी ओर खींचकर लिये जाते हैं, जो पूर्णचन्द्रको देखकर उसमें लहराती हुई उठती है। इस उत्प्रेक्षामें राम-राज्याभिषेकका होना चन्द्रमाका सुशोभित होना (अर्थात् पूर्ण होना) है। रनवास और वारिधि, प्रेम और जल, हर्षसे पुलकावलीका होना और वीचिविलास (अर्थात् समुद्रका बढ़ना) श्रीरामराज्याभिषेकका समाचार सुनना और पूर्णचन्द्रका देखना परस्पर उपमेय-उपमान हैं। इसी प्रकार बालकाण्डमें एक रूपक आया है। यथा—'*कौसिक रूप पयोनिधि पावन। प्रेम बारि अवगाह सुहावन॥ राम रूप राकेस निहारी। बढ़त बीचि पुलकावलि भारी॥*' (१। २६२) '*बढ़त बारिधि बीचि बिलास*'= समुद्र बढ़ता है, तरंगोंकी शोभा भी हो रही है।

नोट—२ दोहेके उत्तरार्धके प्रथम अर्थके पक्षवाले कहते हैं कि इस दोहेमें एक बड़ा विलक्षण चमत्कार दिखाया गया है, जो सम्भवतः ग्रन्थभरमें और कहीं न पाया जायगा। वह यह है कि यहाँ रामचन्द्रको पूर्णचन्द्र नहीं कहते। '*बढ़त*' को विधुका विशेषण मानकर अर्थ करनेसे यहाँका गुप्त आशय समझमें आवेगा। '*बिधु बढ़त*' से जनाते हैं कि चन्द्रमा अभी बढ़ रहा है; अभी पूर्ण तो राज्याभिषेकपर होगा, जब रावण-वध करके रामचन्द्रजी लौटेंगे। यथा—'*राकाससि रघुपति पुर सिंधु देखि हरषान। बढ़ेउ कोलाहल करत जनु नारि तरंग समान॥*' (उ० ३) इस दोहेमें उनको पूर्णचन्द्र कहा। और यहाँ इस समय तो केवल इस मङ्गलोत्सवकी खबर ही मिली है।

विनायकी टीकाकार लिखते हैं कि '*बढ़त बिधु*'=बढ़ता हुआ चन्द्रमा। यहाँ '*बढ़त*' शब्दको चन्द्रका विशेषण इस हेतु माना है कि रामतिलककी केवल तैयारी ही सुनायी दी है। इसे पूर्णचन्द्र कैसे मानें। कदाचित् कहो कि पूर्णचन्द्रके बिना समुद्रकी लहरें कैसे बढ़ीं तो उसका समाधान यह है कि अमावसके

अनन्तर परिवाद्वीजतक भी समुद्रकी लहरें ऊँची उठती हैं और इसी आशयको कविशिरोमणि कालिदासजी 'कुमारसम्भव' में यों लिखते हैं। यथा—'**वेलासमीपं स्फुटफेनराजिर्नवैरुदन्वानिव चन्द्रपादैः।**' सारांश कि जिस प्रकार प्रतिपद चन्द्रके कारण समुद्रकी फेनयुक्त ऊँची लहरें किनारेकी ओर आकर्षित होती हैं।

नोट—३ ☞ दूसरे अर्थके पक्षवाले कहते हैं कि यह चमत्कार अपूर्व है, जो चक्करदार अन्वय करनेसे स्पष्ट होता है। परन्तु प्राकृतिक नियमोंसे यह सिद्ध है कि समुद्रमें पूर्णिमा और अमावस्याको तरंगमालाएँ बढ़ती हैं, सबसे अधिक पूर्णिमामें ही उत्तुङ्ग तरंगोंका दृश्य देखनेमें आता है। अतः बढ़ते हुए चन्द्रमाको अर्थात् शुक्लपक्षकी परिवा, द्वितीया आदिके चन्द्रमाको देखकर समुद्रकी तरङ्गावली बढ़ती है, यह कहना स्वभावानुकूल नहीं जँचता। शुक्लपक्षकी सप्तमी-अष्टमीको जब चन्द्रमा बढ़ता रहता है, तरङ्गमालाओंकी विलासता बहुत घट जाती है। फिर तो यह कहना होगा कि बढ़ते हुए चन्द्रमाको देखकर वीचि-विलास घट भी जाती है। अस्तु, तर्ककी कसौटीपर यह चमत्कारिक अर्थ युक्तियुक्त नहीं जँचता।

नोट ४—बैजनाथजी लिखते हैं कि यहाँ रघुनाथजी चन्द्रमा हैं। जन्मसे लेकर विवाहतक उत्सवरूप कला बढ़ती गयी। राज्याभिषेकको पूर्ण (सोलहों) कलाका जानकर रनवास अवधरूपी समुद्रमें तरङ्गवत् उमगा। पीछे कैकेयी-(कर्तव्य-) रूपी राहुने उसे ग्रस लिया, वनवास देना ग्रास करना है। तत्पश्चात् वनयात्रारूपी कृष्णपक्ष आयेगा।

नोट ५—समुद्रका जल प्रतिदिन दो बार चढ़ता और दो बार उतरता है। इस चढ़ाव-उतारको ज्वारभाटा कहते हैं। चन्द्रमा और सूर्यका आकर्षण ही इसका कारण है। सूर्यकी आकर्षण-शक्ति कभी-कभी चन्द्रमाकी शक्तिके प्रतिकूल होती है, पर अमावस्या और पूर्णिमाको दोनोंकी शक्तियाँ परस्पर अनुकूल कार्य करती हैं, इसीसे उन दिनों ज्वार अधिक उठता है। पूर्णिमाको सूर्य और चन्द्रमा पृथ्वीके आमने-सामने रहते हैं, इससे उस दिन आकर्षण-शक्ति विशेष होती है। सप्तमी और अष्टमीको, दोनों शक्तियाँ एक-दूसरेके प्रतिकूल होनेसे, बहुत कम ज्वार उठता है।

अलङ्कार—यहाँ सब रनवासका एक साथ प्रेमोत्साह बढ़ जाना उत्प्रेक्षाका विषय है। यहाँ 'उक्तविषया-वस्तूत्प्रेक्षा' है।

प्रथम जाइ जिन्ह बचन सुनाए। भूषन बसन भूरि तिन्ह पाए॥ १॥
प्रेम पुलकि तन मन अनुरागीं। मंगल कलस* सजन सब लागीं॥ २॥
चौकँइ[१] चारु सुमित्रा पूरी। मनिमय बिबिध भाँति अतिरूरी॥ ३॥

शब्दार्थ—'**भूषन**'=आभूषण, गहने, अलङ्कार। '**अनुरागीं**'=अनुरक्त हुईं। '**अतिरूरी**'=परम रम्य, बड़ी सुन्दर, मनोहर।

अर्थ—सबसे पहले जिन-जिन लोगोंने जाकर यह खबर सुनायी उन्होंने बहुत-से आभूषण और वस्त्र पाये॥ १॥ रानियोंका शरीर प्रेमसे पुलकित हो रहा है, मनमें अनुराग भरा है। सब मङ्गल कलश सजने लगीं॥ २॥ सुमित्राजीने सुन्दर चौकें पूरीं जो बहुत प्रकारके मणियोंकी, बहुत तरहकी और बड़ी रम्य थीं॥ ३॥

टिप्पणी—१ '*प्रथम जाइ जिन्ह*……' इति। (क) '*प्रथम*' शब्दसे जनाया कि मङ्गल-समाचार सुनाने बहुत लोग गये थे, उनमेंसे जो लोग सर्वप्रथम पहुँचे उनका हाल कहते हैं। ('*जिन्ह*', '*सुनाये*' और '*तिन्ह*'

---

* 'साज' (शुकदेवलाल, वि० टी०, दीनजी)। 'कलस'—राजापुर, काशी, भागवतदास इत्यादि। 'साज' पाठसे अर्थ होगा कि—सब मङ्गलकी सामग्री सजाने लगीं अर्थात् उत्सवकी तैयारी करने लगीं। 'साज' का अर्थ 'मङ्गल' में ही आ जाता है। मङ्गल=मङ्गल सामग्री। यथा—'मंगल मुदित सुमित्रा साजे।', 'मंगल सकल सजहिं सब रानी', 'कनक थार भरि मंगलन्हि' (१। ३४६)

१-चौकें—गी० प्रे०।

बहुवचन शब्दोंसे जनाया कि प्रथम सुनानेवाले भी बहुत थे। ये एक साथ ही पहुँचे, एक साथ ही सबने कहा था। इन्हींका हाल यहाँ कहते हैं। सुनाया तो औरोंने भी, पर पीछे। उनका हाल नहीं कहते।) (ख) प्रथम सुनना और सुननेवालोंका हाल ऊपर कहा, यथा—*'सुनि रहसेउ रनिवास'* और अब सुनानेवालोंका हाल कहते हैं कि *'भूषन'''।'* (ग) *'भूरि तिन्ह पाए'* से सूचित किया कि जिस-जिसने जब भी सुनाया तब उसे भी भूषण-वस्त्र मिले, पर जिन्होंने प्रथम सुनाया उन्हें तो बहुत-बहुत भूषण-वस्त्र मिले। (घ) जैसे पूर्णचन्द्रको देखकर जब समुद्र बढ़ता है तब वह अपनी तरङ्गोंद्वारा मुक्ता, मणि आदि अनेक रत्नोंको निकालकर बाहर तटपर डाल देता है। (यथा—*'सागर निज मर्यादा रहहीं। डारहिं रतन तटन्हि नर लहहीं॥'* (७। २३) यह रामराज्यके समय हुआ ही था। ऊपर रनवासको समुद्र कह आये हैं।) जो तटपर प्रथम पहुँचता है वह सबसे अधिक पाता ही है। इसी तरह रनवासरूपी समुद्र प्रेमानन्दमें मग्न होकर सुनानेवालोंको भूषण-वस्त्र लुटा रहा है। (ङ) 'भूषण-वस्त्र' कहकर जनाया कि रनवासरूपी समुद्र रत्नाकर समुद्रसे अधिक देता है। रत्नाकर भूषण-वस्त्र नहीं देता [(च) 'भूरि' से यह भी जनाया कि सभी रानियोंने दिया। सुनने और सुनानेवाले दोनोंका उत्साह और प्रसन्नता भी इससे प्रकट कर दी। किसने सुनाया? श्रीरामचन्द्रजीके प्रिय करनेवाले उनके मित्रोंने यह सूचना दी। यथा—'**तच्छ्रुत्वा सुहृदस्तस्य रामस्य प्रियकारिणः॥त्वरिताः शीघ्रमागत्य कौसल्यायै न्यवेदयन्। सा हिरण्यं च गाश्चैव रत्नानि विविधानि च**॥ (वाल्मी० २। ३। ४६-४७)

टिप्पणी २—*प्रेम पुलकि तन'''* ' इति। प्रेमके कारण शरीरसे पुलकित होकर और मनमें अनुरागको प्राप्त होकर मङ्गल पदार्थ और मङ्गलकलश सजाने लगीं। ('मङ्गल'=मङ्गल वस्तुएँ। यथा—*'मङ्गल मुदित सुमित्रा साजे॥ हरद दूब दधि पल्लव फूला। पान पूगफल मंगलमूला॥ अच्छत अंकुर लोचन लाजा। मंजुल मंजरि तुलसि बिराजा॥ छुहे पुरट घट सहज सुहाए।'''सगुन सुगंध न जाहिं बखानी। मंगल सकल सजहिं सब रानी'''* ' (१।३४६।३—८) यह 'परम मङ्गल' का अवसर है, यथा—*'एहि अवसर मंगल परम''' ॥'* (७) अवसर भी थोड़ा है, कल ही अभिषेकका मुहूर्त है, अत्यन्त शीघ्रताका काम है, सामग्री भी बहुत है और सभीको अत्यन्त उत्साह है। अतः सभी मङ्गल और कलश सजानेमें लग गयीं।)

टिप्पणी—३ *चौकँई'''* ' इति। (क) *'चौकँई'* बहुवचन है। अर्थात् अनेक चौकें। रानियाँ बहुत हैं। पर चौक पूरना सबसे अच्छा इन्हींको आता है। (श्रीसुमित्राजी मङ्गल-रचनाकी आचार्या हैं। यथा—*'मंगल मुदित सुमित्रा साजे।'* (१। ३४६। ३) चौक पूरनेमें इनसे अधिक निपुण (कुशल) कोई नहीं है। इसीसे इन्हींका चौक पूरना कहा गया।* (ख) *'चारु'* *'मनिमय बिबिध भाँति'* चौकें अबीर, गुलाल, आटा आदिकी भी पूरी जाती हैं पर गुरुकी आज्ञा है कि *'रचहु मंजु मनि चौकें चारू',* उस आज्ञाकी यहाँ पूर्ति दिखायी। (अवध, मिथिलामें प्रायः मणिमय चौकें ही पूरी जाती रही हैं। गुरुने *'चौकें चारू'* कहा था, उसीके अनुकूल यहाँ *'अतिरूरी'* है। बहुत ही सुन्दर और विचित्र हैं)। *'बिबिध'* से सूचित किया कि अनेक चौकें श्रीसुमित्राजीने पूरीं, जितनी हैं उतने ही प्रकारकी हैं। (यह भी जनाया गया कि गजमुक्ता आदि सुन्दर माङ्गलिक मणियोंसे चौकें पूरी गयीं, बीच-बीचमें पीत, लाल, हरित, श्याम आदि रंग-बिरंगकी मणियाँ लगायी गयीं। अथवा, कोई किसी मणिकी बनी, कोई किसीकी, कोई कई एक मणियोंसे रची गयीं इत्यादि।) *'अतिरूरी'* से बनावटकी सुन्दरता कही।

---

* बैजनाथजी लिखते हैं कि मैंने रामरक्षाके तिलकमें एक पौराणिक इतिहास पढ़ा है कि लग्न, फलदान, तिलक और तैलादि चढ़ानेके पश्चात् रावण कौसल्याजीको हर ले गया। ब्याहके दिन जब दशरथजी पहुँचे, तब राजाने अपनी छोटी कन्या सुमित्राका व्याह उनके साथ कर दिया। पीछे गरुड़जी राघवमत्स्यके यहाँसे (जिसके पास रावण कौसल्याजीको रख आया था) कौसल्याजीको ले आये, तब उनके साथ विवाह हुआ। श्रीसुमित्राजीका पाणिग्रहण प्रथम होनेसे देवपूजनादिका अधिकार उन्हींको मिला। इसीसे चौकें उन्होंने पूरीं। (बालकाण्डमें हवि बाँटनेके प्रसङ्गमें जो कथाएँ हमने दी हैं, उनसे तीनों रानियाँ तीन पृथक्-पृथक् राजाओंकी कन्याएँ सिद्ध होती हैं और कौसल्याजीका विवाह प्रथम होना पाया जाता है)।

शङ्का—गुरुजीकी आज्ञाका क्रम यह है, यथा—'*रचहु मंजु मनि चौकें चारू।''''ध्वज पताक तोरन कलस सजहु''''॥*' (६) अर्थात् उन्होंने प्रथम चौकें पूरनेकी बात कही, पीछे कलश सजनेकी। पर यहाँ प्रथम मङ्गलकलशका सजना कहकर तब सुमित्राजीका चौकें पूरना कहा, यह क्यों?

समाधान—श्रीसुमित्राजी मङ्गलरचनाओंकी आचार्या हैं; जैसा बालकाण्ड दोहा ३४६ में '*मंगल मुदित सुमित्रा साजे॥*' (३) प्रथम कहकर तब '*मंगल सकल सजहिं सब रानी॥*' (४) लिखकर सूचित किया गया है। प्रथम श्रीसुमित्राजीने सजाना प्रारम्भ किया तब और भी सब उसमें लगीं। यहाँ गुरुकी आज्ञा है '*मंजु मणिमय चारु*' चौकें पूरी जायँ, इससे सब चौकें इन्होंने पूरीं, क्योंकि इतनी सुन्दर दूसरी कोई रानी न पूर सकती। चौकें बहुत हैं अतएव कलश भी बहुत हैं जो उनपर रखे जायँगे। कलश सजानेमें देर लगेगी, इससे श्रीसुमित्राजीने प्रथम मङ्गलकलशोंका रचना प्रारम्भ करके सबके साथ प्रथम कलश सजा लिये, फिर स्वयं चौकें पूरने लगीं। चौक पूरनेमें इनको अधिक समय नहीं लगता, क्योंकि ये उस कलामें परम कुशल हैं। यदि प्रथम चौकें पूरनेमें लगतीं तो कलश-रचनाके कार्यमें विलम्ब हो जाता।

नोट—स्मरण रहे कि व्रजभाषा और अवधीभाषामें 'श', 'ण', 'ख', 'व' का प्रयोग उच्चारणमें जिह्वाको कष्ट होनेके कारण शुभ नहीं माना जाता। इनके बदले 'स', 'न', 'ष', 'ब' सर्वत्र लिखे गये हैं। मैंने 'ष' की जगह जहाँ-तहाँ 'ख' ही रखा है; क्योंकि दोनोंका उच्चारण एक-सा होता है।

आनँद मगन राम महतारी। दिए दान बहु बिप्र हँकारी॥४॥
पूजी ग्रामदेबि* सुर नागा। कहेउ बहोरि देन बलि भागा॥५॥
जेहि बिधि होइ राम कल्यानू। देहु दया करि सो बरदानू॥६॥
गावहिं मंगल कोकिल बयनीं। बिधुबदनीं मृग सावक नयनीं॥७॥

शब्दार्थ—**हँकारी**=बुलवाकर। 'ग्रामदेवि'—वह देवी-देवता जो ग्रामके बसानेके समय उसकी रक्षाके लिये ग्रामके बाहर प्राय: पश्चिम ओर स्थापित किये जाते हैं। श्रीअयोध्याजीमें इसी तरहका एक 'चुटकी देवी' का स्थान कहा जाता है। **सुर**=(सुरा पीनेवाले) देवता। ये स्वर्गके देवता हैं।† नाग—१। ७, १। ६१। १ '*किंनर नाग सिद्ध गंधर्बा*', '*देव दनुज नर नाग मुनि''''।*' (१। ६८) में देखिये। शिवसंहिता और रामतापिनीयोपनिषद्में इनका वर्णन है। इनका कुल अष्टकुल कहलाता है। तापिनीमें १२ कहे गये हैं। ये श्रीहरि-मन्दिरके द्वारपाल कहे जाते हैं। इनका पूजन यज्ञादि शुभ कार्योंमें अवश्य होता है। भक्तमालमें नाभाजीने भी इनकी वन्दना की है। ये माङ्गलिक समझे जाते हैं। वे ये हैं—एलापत्रजी, अनन्तजी (शेष), पद्मजी, शंकुजी (शङ्ख), अशुकम्बलजी, वासुकिजी, करकोटकजी और तक्षकजी। कोई-कोई 'नाग' से शेषनागका अर्थ लेते हैं, पर मेरी समझमें नागसे 'अष्टकुल नाग देवों' का बोध होता है; इसमें शेषजी भी आ जाते हैं और मङ्गलकार्योंमें जो पूजनका विधान है उसको भी हानि नहीं पहुँचती, किंतु उसकी भी पूर्ति हो जाती है। इसीसे यह व्यापक शब्द गोस्वामीजीने रखा है। **बहोरि**=फिर, दूसरी बार भी, पुन:। '**बलि भागा**'= देवताओंका यज्ञका भाग। जैसे अधिकारी देवता होते हैं, वैसा ही यज्ञका भाग उनको मिलता है। हव्य देवताओंके भागके लिये और कव्य पितृगणके भागके लिये प्रयुक्त होता है। पूजा; भेंटकी वस्तु; उपहार; पूजाकी सामग्री वा

* ग्रामदेवि—राजापुर, का०, रा० गु० द्वि०, भा० दा०, ना० प्र०। ग्रामदेव—वै०, शुकदेवलाल, दीनजी।

† बैजनाथजी तथा दीनजी 'सुरनागा' को एक शब्द मानकर निम्न अर्थ करते हैं। (१) नाग=हाथी। नागसुर=मत्तहस्तीका रूप धारण किये हुए यक्षेशजो जो पुरीकी रक्षा करते हैं, यथा—'मत्तनागेन्द्र रूपं तं यक्षराजं प्रणम्य च' (शिवसं०)। पुरकी ईशान दिशामें मत्तगयन्द कोतवाल प्रसिद्ध हैं, ये ही ग्रामदेव नागसुर हैं (वै०)। (२) सुरनागा= नागेश्वर महादेव; ये ही प्रधान ग्रामदेव थे। (दीनजी)। प्राचीन पाठ 'देवि' है। ऐसी हालतमें मत्तगयन्द या नागेश्वरनाथ महादेव 'ग्रामदेवि' नहीं हो सकते। 'सुर' व्यापक शब्द है, उसमें सभी देवता आ सकते हैं और 'देवि' से देवियोंकी भी पूजा हो गयी।

उपकरण; देवताका भाग; भक्ष्य अन्न या खानेकी वस्तु, यथा—*बैनतेय बलि जिमि चह कागू। जिमि ससु चहै नाग अरि भागू॥*' (१। २६७। १) '*रामहि राखहु कोउ जाई। जब लौं भरत अयोध्या आवैं कहत कौसल्या माई॥ आए भरत दीन ह्वै बोले कहा कियौ कैकयि माई। हम सेवक वा त्रिभुवनपतिके सिंहको बलि कौआ खाई?*'—सूर।=नैवेद्य, चढ़ौती, भोग, यथा—'*बलि पूजा चाहत नहीं चाहत एक प्रीति। सुमिरत ही मानै भलो पावन सब रीति।* (विनय० १०७)। (श०सा०)। १-२६७ (१) देखिये। पुनः, बलि उस पशुको भी कहते हैं, जो किसी अवैष्णवी देवस्थानपर वा किसी देवताके उद्देश्यसे मारा जाय॥७॥

अर्थ—रामचन्द्रजीकी माँ कौसल्याजी आनन्दमें मग्न हैं। उन्होंने बहुत-से ब्राह्मणोंको बुलवाकर बहुत दान दिये॥४॥ उन्होंने ग्राम-देवी, देवताओं और नागोंकी पूजा की और पुनः बलिभाग देनेको कहा (अर्थात् कार्य सफल होनेपर फिरसे पूजाकी मनौती मानी)॥५॥ (पूजा करके वर माँगती हैं कि) जिस प्रकार रामचन्द्रजीका कल्याण हो वही वरदान दया करके दीजिये॥६॥ कोकिलकी-सी रसीली मीठी वाणीवाली, चन्द्रमुखी और हिरनके बच्चोंकी-सी आँखोंवाली स्त्रियाँ मङ्गल गान कर रही हैं॥७॥

टिप्पणी—१ '*आनँद मगन*…' इति (क) सब रानियोंका आनन्द कहकर सबसे पृथक् अब कौसल्याजीका आनन्द कहते हैं। परममङ्गल सुनकर सब रानियोंको हर्ष हुआ—'*सुनि रहसेउ रनवास।*' (७) और कौसल्याजी तो श्रीरामजीकी निज माता हैं, अतएव ये तो आनन्दमें डूब ही गयीं। इनको सबसे अधिक आनन्द हुआ। (इससे इन्हें दान देना, देवी, देवता और नागोंका पूजन ही रुच रहा है।) सब रानियाँ मङ्गल सजाने लगीं, सुमित्राजी चौकें पूरने लगीं, पर कौसल्याजीने बहुत-से ब्राह्मणोंको बुलाया और दान देने लगीं। (अन्य रानियोंने केवल मङ्गल समाचार सुनानेवालोंको बख़शीश दी थीं।)

टिप्पणी—२ सब रनवासको समाचार मिला, सब हर्षित हुईं, मङ्गल सजाने लगीं। कौसल्याजीको सबसे अधिक आनन्द हुआ। पर कैकेयीजीको खबर न हुई। किसीने उनसे समाचार न कहा—यही विघ्नके प्रवेशका दरवाजा है, यही बात मन्थरा आगे कैकेयीजीसे कहेगी। यथा—'*भयउ पाख दिन सजत समाजू। तुम्ह पाई सुधि मोहि सन आजू॥*' (१९। ३)

नोट—१ इसीको हरि-इच्छा कहेंगे। नहीं तो उन्हें खबर होती, तो वे भी मङ्गल कार्यमें सबसे आगे सम्मिलित होतीं, उनको तो राम प्राणसे भी प्यारे थे। पर लीला कैसे बनती? सखी, सहेलियाँ और नगरकी स्त्रियाँ रनवासमें बधाई देने आती हैं, निछावरें पा रही हैं, परंतु कैकेयीके महलमें यह स्त्रियाँ जान-बूझकर नहीं जातीं; क्योंकि श्रीरामचन्द्रजीको कैकेयी कितनी ही चाहती हो, राज्यके मामलेमें उनका किसीको विश्वास नहीं है और यह भी पता चलता है कि राजा दशरथने कैकेयीसे विवाहके समयमें की हुई शर्तोंको कितना ही गुप्त रखा हो, भगवान् रामचन्द्रजीपर प्राण देनेवाली प्रजाको उसका पता जरूर लग गया था और जैसे कैकेयीसे राजा और राजपुरुषोंने छिपाया वैसे ही सारी प्रजा कैकेयीसे छिपानेमें एकमत थी। अन्यथा इतने बड़े समारोहकी चर्चा पहले पहल कुटिला और मन्थरासे सुननेमें न आती। (गौड़जी)

टिप्पणी—३ '*ग्रामदेवि सुर नागा*…' इति। (क) तीन नाम देकर तीनों लोकोंके देवताओंकी पूजा सूचित की। ग्रामदेवी मर्त्यलोककी, सुर स्वर्गलोकके और नाग पातालके। (ख) '*कहेउ बहोरि देन बलि भागा*'—स्त्रियोंमें मानता माननेकी रीति है, यथा—'*पति देवर सँग कुसल बहोरी। आइ करौं जेहि पूजा तोरी॥*' (१०३। ३) वैसे ही कौसल्याजी कहती हैं कि कार्य सिद्ध होनेपर तुम्हें पूजा दूँगी। बलि=पूजा, यथा—'**बलिः पूजोपहारकः।**' भाग शब्दसे जनाया कि पृथक्-पृथक् सबकी पूजा दूँगी। देवताओंको बलि-भाग बहुत प्रिय है; अतः कहती हैं कि हम दूसरी बार फिर पूजा देंगी, जिसमें उसकी लालचसे वे कार्य सिद्ध कर दें। (ग) स्त्रियाँ ग्रामदेवी, ग्रामदेवता और नागकी बाँबीकी पूजा किया करती हैं, इसीसे रानियोंका इनको पूजना लिखा। पुरुष साधु, ब्राह्मण और यज्ञके देवताओंकी पूजा किया करते हैं, अतएव राजाका विप्र-साधु-सुरकी पूजा करना कहा। (राजाको विप्र, साधु, सुरकी पूजा योग्य है और स्त्रियोंको ग्रामदेविकी)। पुनः (घ) यहाँ तीन प्रकारके देवताओंकी पूजा की गयी। विप्र

और साधु सतोगुणी हैं, सुर रजोगुणी हैं और ग्रामदेवी, ग्रामदेव तमोगुणी हैं, इनकी पूजामें अनेक जीवोंका बलि प्रदान होता है।

नोट २—वाल्मीकिजी लिखते हैं कि राज्याभिषेकका प्रिय संवाद पानेपर कौसल्याजी आनन्दमें मग्न हो गयीं, देवभवनमें बैठी देवाराधन करने लगीं, प्राणायामद्वारा जनार्दन पुरुषका ध्यान कर रही हैं। आँख खुलनेपर उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा कि 'पुण्डरीकाक्षभगवान्‌की मेरी आराधना सफल हुई'। यथा—'**वाग्यतां देवतागारे ददर्शायाचतीं श्रियम्॥**'……'**श्रुत्वा पुष्ये च पुत्रस्य यौवराज्येऽभिषेचनम्। प्राणायामेन पुरुषं ध्यायमाना जनार्दनम्॥**……**अमोघं बत मे क्षान्तं पुरुषे पुष्करेक्षणे।**' (सर्ग ४। ३०, ३३, ४१)

अध्यात्मरामायणमें लिखा है कि श्रीरामजीके अर्थ-सिद्धि-निमित्त कौसल्याजीने लक्ष्मीजीकी पूजा की और विघ्ननिवारणहेतु दुर्गाकी पूजा की। यथा—'**लक्ष्मीं पर्यचरद्देवीं रामस्यार्थप्रसिद्धये।**……**इति व्याकुलचित्ता सा दुर्गां देवीमपूजयत्॥**' (२।२।४२-४३)

वे० भूषणजी—'**बलिः पूजोपहारे च**' प्रसिद्ध धातु है, और बलिका अर्थ विश्वकोषमें इस तरह लिखा है—'**बल्यते दीयते इति बल्-दाने सर्गधातुभ्यो इन् उण्।**' (४। १। १३) **इतीन्**। १ राजकर। २ उपहार भेंट। ३ पूजाकी सामग्री, वह सामग्री जिससे देवताओंको पूजा जाता है। किसी देवताकी प्रधान पूजनयोग्य सामग्री, जैसे सूर्यको गुणभेदन, चन्द्रमाको घृत-दुग्ध, मंगलको पावक (जाउरि), बुधको क्षीरान्न, बृहस्पतिको दध्योदन, शुक्रको घृतोदन, शनिको खिचड़ी, शिवको अक्षत, इन्द्रको अपूप (मालपुआ) और विष्णुको हविष्यान्न इत्यादि।

रहस्य ग्रन्थोंमें अयोध्याके ग्रामदेव विष्णु बतलाये गये हैं, यथा—'**तस्मात्पश्चिमदिग्भागे नाम्ना विष्णुर्हरिः स्मृतः। देवो दृष्टप्रभावोऽसौ प्राधान्येन वसत्यपि॥**' (रुद्रयामल अ० मा० १४। ७४) अतः उनके लिये हविष्यान्नका ही ग्रहण हो सकता है। यथा—'**यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।**' (यजुः ३१। १४) '**हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥**' (यजुः ३१। १४) धानकी खील और दुग्ध नागपूजाकी सामग्री है। अयोध्याकी ग्रामदेवी लक्ष्मीजी हैं, जिनकी पूजन-सामग्री प्रधानतया रोरी, कमलपुष्प, तिल और गुड़ आदि हैं। श्रीगोस्वामीजी तथा श्रीसूरदासजीने उपर्युक्त अर्थोंमें ही '*बलि*' शब्दका प्रयोग किया है।

टिप्पणी—४ '*जेहि बिधि होइ*……*सो बरदानू*' इति। (क) जब श्रीरामजी ब्याह करके घर आये, तब रानीने वरदान माँगा था, यथा—'*देव पितर पूजे बिधि नीकी।*……*सबहि बंदि माँगहिं बरदाना। भाइन्ह सहित राम कल्याना॥*' (१। ३५१। १-२) उस समय देवताओंने आशीर्वाद भी दिया था, यथा—'*अंतरहित सुर आसिष देहीं। मुदित मातु अंचल भरि लेहीं॥*' (१। ३५१। ३) और यहाँ विशेष उत्कण्ठा और दीनतापूर्वक वरदान माँगनेपर भी कि '*जेहि बिधि होइ राम कल्यानू। देहु दया करि सो बरदानू॥*' देवता वर नहीं दे रहे हैं, क्योंकि यह कार्य (राज्याभिषेक-उत्सव) उनके प्रतिकूल है, इससे वे सब प्रतिकूल हो रहे हैं, यथा—'*सकल कहहिं कब होइहि काली। बिघन मनावहिं देव कुचाली॥ तिन्हहि सोहाइ न अवध बधावा।*' (११। ६-७) पुनः [(ख) '*राम कल्यानू*'—कौसल्यामाता राज्याभिषेकको ही कल्याण समझ रही हैं, इसीसे वे ऐसा वर माँगती हैं। राज्याभिषेक हो ऐसा वे नहीं कहतीं। यह भी हरि-इच्छासे] श्रीरामजीका कल्याण तो पृथ्वीका भार उतारनेसे ही है, अतः देवता कैसे कहें कि इस समय श्रीरामजीका राज्याभिषेक हो इसी कारण राजाको विप्र, साधु और सुर आशीर्वाद नहीं देते और न रानीको ग्रामदेवी आशीर्वाद दें। (ग) रानियोंका प्रसंग '*मंगल कलस सजन सब लागीं।*' (८। २) पर छोड़कर श्रीकौसल्याजी और श्रीसुमित्राजी-का कृत्य वर्णन करने लगे थे, अब पुनः उसी प्रसंगसे उठाते हैं, मङ्गल सजाती हैं, मङ्गल गाती हैं। (घ) '*गावहिं मंगल कोकिल बयनीं।*……' इति। स्त्रियाँ जब देवीपूजन करने जाती हैं तब देवीके गीत गाती हैं। यहाँ रानी ग्रामदेवीकी पूजा करती हैं, इसीसे स्त्रियोंका गाना लिखा।'*गावहिं मंगल*' से गानकी शोभा, '*कोकिल बयनीं*' से स्वरकी शोभा और '*बिधुबदनीं मृग सावक नयनीं*' से रूपकी शोभा कही। देवीके मन्दिरमें सब मुँह खोले बैठ गान कर रही हैं, इसीसे सर्वाङ्गको छोड़कर केवल मुख और नेत्रका वर्णन किया।

(बालकाण्डमें *'मंगल मुदित सुमित्रा साजे।'* (३४६। ३) से लेकर *'मंगल सकल सजहिं सब रानी। रचीं आरती बहुत बिधाना।'* (३४६। ८) तक मङ्गल साजका सजना कहकर वहाँ भी मंगल गान करना कहा है—*'मुदित करहिं कल मंगल गाना।'* पर वहाँ स्त्रियोंको *'बिधुबदनीं' 'मृग सावक नयनीं'* विशेषण नहीं दिये गये हैं। इससे जनाया कि वहाँ उनका स्वर सुनायी देता था, मुँह और नेत्र दिखायी नहीं देते थे, घूँघटसे ढके हुए थे।)

दो०—राम राज अभिषेक सुनि हिय हरषे नर नारि।
लगे सुमंगल सजन सब बिधि अनुकूल बिचारि॥ ८॥

शब्दार्थ—**अनुकूल**=म्वाफिक, दहिने, सहायक, प्रसन्न।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजीका राज्याभिषेक सुनकर (नगरके) स्त्री-पुरुष हृदयमें हर्षित हुए। विधाताको अपने अनुकूल समझकर सब-के-सब सुन्दर मङ्गल सजाने लगे॥ ८॥

टिप्पणी—१ (क) प्रथम रनवासमें खबर पहुँची, इसीसे पहले रनवासका मङ्गल वर्णन किया। पीछे नगरमें समाचार पहुँचा तब पुर-नर-नारी मङ्गल सजने लगे। रामराज्याभिषेककी तैयारीमें किसीको कोई शकुन नहीं हो रहे हैं और न देवता ही पुष्पोंकी वृष्टि करते हैं; क्योंकि यह कार्य सिद्ध होनेवाला नहीं है। राजा और रानियोंका कृत्य ऊपर कह चुके। राजाका कृत्य, यथा—*'बिप्र साधु सुर पूजत राजा। करत रामहित मंगल काजा॥'* (इसे कहकर अवधभरमें बधावोंका बजाना लिखा था। फिर श्रीसीतारामजीको मङ्गल शकुनका होना कहा, तत्पश्चात् रनवासका मङ्गल सजना कहा।) *'प्रेम पुलकि तन मन अनुरागीं। मंगल कलस सजन सब लागीं॥……'* रानियोंका कृत्य है। अब पुरवासियोंका कृत्य कहते हैं—*'लगे सुमंगल सजन सब……'*। *'सुनत राम अभिषेक सुहावा। बाज गहागह अवध बधावा॥'* (७। ३) उपक्रम है और *'राम राज अभिषेक सुनि……'* उपसंहार है। [प्र० सं० में हमने लिखा था कि *'सुनत राम अभिषेक सुहावा।……'* पर जो प्रसङ्ग छोड़ा था, उसे यहाँ इस दोहेपर मिलाते हैं। (ख) पुरवासियोंने क्या सुमङ्गल सजाये? जो बालकाण्ड *'निज निज सुंदर सदन सँवारे।'* (३४४। ४) से *'बिबिध भाँति मंगल कलस गृह गृह रचे सँवारि।'* (३४४) तक कहा गया है, वही सब सुमङ्गल यहाँ समझना चाहिये।]

नोट—१ *'बिधि अनुकूल बिचारि'* इति। विधाता तो प्रतिकूल हो रहे हैं, पर इन सबके हृदयमें अभिषेककी पूर्णाभिलाषा तो थी ही और उसीकी खबर अब सुनी कि मुहूर्त्त भी निश्चित हो गया कि कल होगा, इससे उनका ऐसा अनुमान करना उचित ही था कि महेशजीको हम मनाते थे, उन्होंने हमारी सुन ली और राजाको इस कार्यकी प्रेरणा की, इससे विधाता अवश्य अनुकूल जान पड़ते हैं। यहाँ 'अनुमान प्रमाण अलङ्कार' है।

तब नरनाह बसिष्ठ बोलाये। रामधाम सिख देन पठाये॥ १॥
गुर आगमनु सुनत रघुनाथा। द्वार आइ पद नायेउ माथा॥ २॥
सादर अरघ देइ घर आने। सोरह भाँति पूजि सनमाने॥ ३॥

शब्दार्थ—**अरघ**—(सं० अर्घ, अर्घ्य) जल, दूध, दही, कुशाग्र, सरसों, तंदुल और जलको मिलाकर देव, गुरु आदि पूज्य व्यक्तियोंको अर्पण करना यह षोडशोपचार पूजनमें एक विधि है। आजकल देवताओंके सामने जो जल गिरानेकी रीति है वह इसीकी बिगड़ी हुई रीति है। (१। ३१९। ८, १। ३२०। ८) देखिये।

अर्थ—तब राजाने वसिष्ठजीको बुलवाया और श्रीरामचन्द्रजीके महलमें शिक्षा देनेको भेजा॥ १॥ गुरुजीका आना सुनते ही श्रीरघुनाथजीने दरवाजेपर आकर गुरुके चरणोंमें मस्तक नवाया अर्थात् प्रणाम किया॥ २॥ आदर-पूर्वक अर्घ्य देकर उनको घरमें लाये और सोलहों प्रकारसे उनका पूजन कर उनका सत्कार किया॥ ३॥

टिप्पणी—१ *'तब नरनाह……'* इति। (क) 'तब अर्थात् जब विप्र-साधु-सुर-पूजारूपी मङ्गल कार्य कर चुके।' *'नरनाह'* गुरुको बुलवाना और अपने कामके लिये भेजना अनुचित है, अतएव *'नरनाह'* शब्द देकर

इस अनौचित्यका समाधान किया। अर्थात् चक्रवर्ती महाराज हैं, सब मनुष्योंके स्वामी वा राजा हैं, अतः उनके लिये अनुचित नहीं। भक्तिसे एक बार गुरुजीके यहाँ हो आये ही हैं। [(ख) वसिष्ठजी इस कुलके इक्ष्वाकु महाराजके समयसे ही गुरु, मन्त्री और पुरोहित हैं। मन्त्रीका काम पड़ता है तब बुलाये जाते ही हैं, क्योंकि मन्त्रियोंसे राजसभामें ही सम्मति ली जाती है। मन्त्रीकी हैसियतसे बुलाना अयोग्य नहीं। ये पुरोहित भी हैं, यह स्वयं वसिष्ठजीने कहा है, यथा—*'उपरोहित्य कर्म अति मंदा। जब न लेउँ मैं तब बिधि मोही। कहा लाभ आगे सुत तोही॥'* (७। ४८) पुरोहितका काम आये दिन पड़ा ही करता है, बिना बुलाये काम कैसे चल सकता है? पुरोहितकी हैसियतसे उनको बुलाना अयोग्य नहीं है। इसीसे वाल्मीकिजीने इस प्रसङ्गमें वसिष्ठजीको 'पुरोहित' विशेषण दिया है। यथा—'**पुरोहितं समाहूय वसिष्ठमिदमब्रवीत्।**' (२। ५। १) अर्थात् राजाने पुरोहित वसिष्ठको बुलाकर उनसे कहा। और गोस्वामीजीने तो *'गुरु'* विशेषण देकर भी इनका बुलाया जाना लिखा है, यथा—*'गुर बसिष्ठ कहँ गएउ हँकारा। आए द्विजन्ह सहित नृपद्वारा॥'* (१। १९३। ७) (यह रामजन्म-समयकी बात है। इस समय नान्दीमुख श्राद्धादि संस्कार कराना है जो पुरोहितका काम है।) इसी तरह नामकरणके समय भी बुला भेजना लिखा है, यथा—*'नामकरन कर अवसरु जानी। भूप बोलि पठए मुनि ग्यानी॥'* (१। १९७। २)—यह भी पुरोहितका काम है। उसी हैसियतसे यहाँ बुलाया। अथवा, यह समझ लें कि राजाके पास धावन पहुँचा कि गुरु महाराज आ रहे हैं, यह सुनकर राजाने तुरत लानेको प्रतिष्ठित लोगोंको भेजा। पर यह भाव मेरी समझमें किसी ग्रन्थसे प्रमाणित नहीं है। पंजाबीजी लिखते हैं कि अत्यन्त सुहृदताके कारण बुलानेमें दोष नहीं है और बाबा हरिहरप्रसादजी कहते हैं कि अहङ्कारपूर्वक बुला भेजनेमें दोष है। ☞ स्मरण रहे कि वसिष्ठजी इस कुलके सर्वेसर्वा हैं, उन्हींकी आज्ञासे सब कार्य होते हैं। यथा—'**वक्ता सर्वेषु कृत्येषु वसिष्ठो भगवानृषिः।**' (वाल्मी० १। ७०। १७) तब उनको बुलवा भेजना क्योंकर अनुचित है?]

नोट—१ *'रामधाम''''* इति। (क) *'राम धाम'* कनक-भवन है। वस्तुतः यह कैकेयीजीका महल था; जो उन्होंने श्रीसीताजीको मुँह-दिखायीकी रस्ममें दिया था। इस महलके बाहर तीन पौरियाँ वा परकोटे थे, चौथेमें यह भवन था। इसके भीतर अनेकों सतमहले भवन बने हुए थे। कैलासके समान आभायुक्त, स्वच्छ और ऊँचा था। इन्द्र और कुबेरके भवनोंके समान मनोहर, दीप्तिमान्, समृद्धिमान् और प्रखर तेजसे युक्त था। इसका वर्णन (वाल्मी० २। १५। ३०—४५) में है। (ख) *'सिख देन पठाये'*—गुरु वसिष्ठजीको ही भेजा; क्योंकि ये बड़े विनयशील, तपोधन, वेदज्ञोंमें श्रेष्ठ, मन्त्रवेत्ता तथा व्रतधारी हैं। और श्रीरामजीसे श्रीजानकीजीसहित मन्त्रपूर्वक उपवासका संकल्प कराना और संयमका उनको उपदेश देना तथा विधि बतलाना है। यह भाव (वाल्मी० २। ५। २—४) में इस प्रसङ्गमें आये हुए विशेषणोंसे निकलता है, यथा—'**गच्छोपवासं काकुत्स्थं कारयाद्य तपोधन।''''**'।''''**वेदविदां वरः।''''उपवासयितुं वीरं मन्त्रविन्मन्त्रकोविदम्।''''**'।'''' **इत्युक्त्वा स तदा राममुपवासं यतव्रतः। मन्त्रवत्कारयामास वैदेह्या सहितं शुचिः॥**' (११) अतएव वसिष्ठजीको भेजा। ये गुरु और पुरोहित तो हैं ही। पं० विजयानन्द त्रिपाठीजीका मत है कि 'वसिष्ठजीको '**सिख**' देनेके लिये भेजनेका आशय यही था कि कहीं श्रीरामजीकी ओरसे कोइ आपत्ति न खड़ी हो। चक्रवर्तीजी जानते थे कि *'लोभ न रामहिं राजकर बहुत भरतपर प्रीति॥'* (३१) (ग) *'सिख'*—विधिपूर्वक उपवास और शुद्धता तथा इन्द्रियजयपूर्वक पृथ्वीपर शयनका उपदेश, यथा—'**अद्य त्वं सीतया सार्धमुपवासं यथाविधि॥ कृत्वा शुचिर्भूमिशायी भव राम जितेन्द्रियः।**' (अ० रा० २। २। ३४-३५) श्रीरामचन्द्रजीने पत्नीसहित स्नान कर हविका पात्र लेकर घीकी आहुति दे-देकर हवन किया। बचे हुए हविषका भोजन किया और मनोरथसिद्धिकी प्रार्थना की। मौनी और पवित्र-चित्त होकर वे यज्ञमण्डपमें श्रीजानकीजीके साथ सोये। पहर रात रहे उठे। प्रातः संध्या करके मधुसूदनकी स्तुति की और ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराया। (वाल्मी० २। ६। १-७) में दिये हुए इस नियमसे अनुमान होता है कि यही शिक्षा दी गयी, यही संयमकी विधि बतानेके लिये गुरुजी भेजे गये थे।

टिप्पणी—२ *'गुर आगमनु सुनत·····'* इति। (क) *'सुनत'* से सूचित हुआ कि किसी द्वारपालादिने पूर्व ही आकर सूचना दी कि श्रीगुरुजी आ रहे हैं। (ख) *'रघुनाथा द्वार आइ'* से जनाया कि श्रीरामजी अकेले ही अगवानीके लिये आये हैं। सीताजी रानी हैं, अतः वे द्वारपर न जा सकीं, वे महलके भीतर ही प्रणाम करेंगी। (ग) 'रघुनाथ' का भाव कि रघुकुल (सभी रघुवंशी) धर्मात्मा हैं और ये तो उन सबोंके नाथ हैं इसीसे इन्होंने गुरुका बड़ा आदर किया। गुरुको आगे जाकर मिले और प्रणाम किया, यही आदर है। [ये रघुकुलके नाथ हैं, इनका अवतार ही धर्मरक्षाहेतु हुआ है, तब ये क्यों न धर्मका पालन करेंगे। अतः द्वारपर आकर प्रणाम किया, इससे उनका शील-स्वभाव भी दिखाया। (प्र०सं०)] यथा—*'सकल द्विजन्ह मिलि नायउ माथा। धरम धुरंधर रघुकुल नाथा॥', 'सील सिंधु सुनि गुरु आगवनू। सिय समीप राखे रिपुदवनू॥ चले सबेग रामु तेहि काला। धीर धरम धुर दीनदयाला॥ गुरहि देखि सानुज अनुरागे। दंड प्रनाम करन प्रभु लागे॥'* (२४३।१—३) तथा यहाँ *'द्वार··'*।

नोट—२ *'सादर अरघ देइ घर आने।·····'* इति। (क) *'सादर'* से 'पाद्य' भी सूचित कर दिया अर्थात् पाँवड़े देते हुए। पुनः जो वाल्मीकिजीने लिखा है कि हाथ-से-हाथ धरकर स्वयं उन्हें रथसे उतारा वह भी 'सादर' में गृहीत है। यथा—'**अभ्येत्य त्वरमाणोऽथ रथाभ्याशं मनीषिणः। ततोऽवतारयामास परिगृह्य रथात्स्वयम्॥**' (२।५।७) (ख) गुरु साक्षात् भगवान् हैं,अतएव जैसे भगवान्‌का षोडशोपचार पूजन होता है वैसे ही गुरुजीकी पूजा उन्होंने की। षोडशोपचार, यथा—'**आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम्। मधुपर्काचमनस्त्रानं वस्त्रं चाभरणानि च। सुगन्धं सुमनो धूपं दीपं नैवेद्यवन्दनम्॥**' (विशेष १।४५।६ *'करि पूजा मुनि सुजस बखानी'* में देखिये)। अर्थात् १६ अङ्ग ये हैं—स्वागत (आवाहन), अर्घ्य, पाद्य, आसन, आचमन, मधुपर्क, स्नान, वस्त्राभरण, यज्ञोपवीत, गन्ध, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, परिक्रमा और वन्दना।

टिप्पणी—३ (क) गुरुजीकी आज्ञा हुई थी कि *'पूजहु गनपति गुर कुलदेवा।'* (६—८) इनमेंसे साधु और सुरकी पूजा राजाने की और ग्रामदेवी, देवता और नागोंकी पूजा रानीने की । रही गुरुजीकी पूजा, सो उसकी पूर्ति अब श्रीरामजीने कर दी। (ख) जब गुरुजी महलके भीतर आये, तब श्रीसीताजीको चाहिये था कि गुरुजीको प्रणाम करतीं, किंतु उनका प्रणाम करना यहाँ नहीं पाया जाता। इससे ज्ञात होता है कि श्रीरामजी गुरुजीको अर्घ्य देकर घर ले आते ही उनका षोडशोपचार पूजन करने लगे, इससे उनको प्रणाम करनेका मौका ही न मिला, कारण कि पूजनके बीचमें प्रणाम करनेकी विधि नहीं है। पूजाके अन्तमें ही प्रणामकी विधि है, अतएव अन्तमें जब श्रीरामजीने उनको प्रणाम किया तब साथ ही, सीताजीने भी किया, जैसा आगे कहते हैं—*'गहे चरन सिय सहित बहोरी'*।

नोट ३— यह भी हो सकता है कि वे पूजा-सामग्रीमें लगी रहीं; उससे खाली हुईं तब प्रणाम किया। पुनः *'बहोरी'* पदसे यह भी भाव निकलता है कि सीताजी प्रथम ही एक बार रामसहित प्रणाम कर चुकी थीं, अब फिर किया। पंजाबीजी लिखते हैं कि सीतासहित पूजा की और अन्तमें दोनोंने साथ-साथ चरणस्पर्श किये।

गहे चरन सिय सहित बहोरी। बोले रामु कमलकर जोरी॥ ४॥
सेवक सदन स्वामि आगमनू। मंगलमूल अमंगल दमनू॥ ५॥
तदपि उचित जन बोलि सप्रीती। पठइअ काज नाथ असि नीती॥ ६॥
प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू। भयउ पुनीत आजु यह गेहू॥ ७॥
आयसु होइ सो करौं गोसाईं। सेवकु लहइ स्वामि सेवकाईं॥ ८॥

शब्दार्थ—**बहोरी**=तत्पश्चात्, उसके बाद, पुनः। **सदन**=घर। **अमंगल**=अनिष्ट, अकल्याण। **दमनू**=दमन अर्थात् दबाने, नष्ट वा दूर करनेवाला। **तदपि**=तो भी, तथापि। **जन**=दास, सेवक। **गेह**=घर।

अर्थ—फिर श्रीसीतासहित श्रीरामचन्द्रजीने उनके चरण पकड़े अर्थात् उनको प्रणाम किया और कमल-समान दोनों हाथोंको जोड़कर बोले॥ ४॥ (यद्यपि) सेवकके घर स्वामीका आना मङ्गलोंका मूल और अमङ्गलोंका नाश करनेवाला है तो भी, हे नाथ! उचित था कि प्रेमपूर्वक दासको कार्यके लिये बुला भेजते। ऐसी ही नीति है॥ ५-६॥ हे प्रभो! आपने अपनी प्रभुता छोड़कर मेरे ऊपर प्रेम किया। (दिखलाया) आज यह घर पवित्र हो गया॥ ७॥ हे गुसाईं! जो आज्ञा हो मैं उसे करूँ। स्वामीकी सेवासे ही सेवककी शोभा है (यह सेवा इस सेवकको मिले)॥ ८॥

टिप्पणी—१ (क) *'गहे चरन सिय सहित बहोरी।'* इति *'बहोरी'* अर्थात् षोडशोपचारके अन्तमें। पुनः बहोरी अर्थात् दूसरी बार फिर; क्योंकि एक बार द्वारपर प्रणाम कर चुके हैं, यथा—*'द्वार आइ पद नायउ माथा'* अब पूजाके अन्तमें प्रणाम किया (क्योंकि यह षोडशोपचार पूजनका अङ्ग है)। (ख) *'कमल कर जोरी'* अर्थात् विनय-प्रार्थनापूर्वक। (ग) *'सेवक सदन……'* इति। स्वामीका आगमन मङ्गलका मूल है, अर्थात् स्वामीके साथ ही पीछे-पीछे समस्त मङ्गल भी सेवकके सदनमें आ जाते हैं, यथा—*'सो सुख सुजस सुलभ मोहि स्वामी। सब बिधि तव दरसन अनुगामी॥'* (१। ३४। ३। ५) (श्रीजनकवचन विश्वामित्र-प्रति)। महात्माके पीछे-पीछे सब मङ्गल चलते हैं। प्रथम तो स्वामीको सेवकपर स्नेह हुआ। जब उन्होंने स्नेह किया तब सेवकके घर आये। जब वे घर आये तब (घर) मङ्गलका मूल हुआ। मङ्गलका मूल होनेसे अमङ्गलका नाश हुआ। यहाँ 'कारणमाला अलङ्कार' है।

टिप्पणी—२ *'तदपि उचित जन……'* इति। (क) *'उचित'* का भाव कि यह अनुचित है कि कार्यके लिये आज्ञा देनेको स्वामी सेवकके घर जाय, सेवकको बुलाकर आज्ञा देना उचित है। सेवकका मङ्गल तो दोनों प्रकार है चाहे स्वामी उचित करें वा अनुचित। (ख) सप्रेम बुला भेजनेका भाव यह है कि शिष्यपर गुरुका अधिकार है कि डाँटकर बुलावे, परंतु जब गुरु प्रीतिसे बुलाते हैं तब तो गुरुकी प्रसन्नता और कृपामें कोई कसर नहीं समझी जा सकती। शिष्यके लिये इतना ही बहुत है (गौड़जी)। (ग) *'बोलि पठइअ काज'*—भाव कि स्वामीको सेवकके घर उसे आज्ञा देनेके लिये न जाना चाहिये, किंतु उसे बुलवाकर आज्ञा देनी चाहिये। (घ) *'नाथ असि नीती'* इति। ऐसी नीति है। भाव कि मैं सेवक हूँ, आप स्वामी हैं। सेवकको स्वामीके घर जाना चाहिये। पर आपने मुझपर स्नेह या उस स्नेहके कारण आपने नीतिकी मर्यादा त्याग दी, यह बड़ी कृपा की है।

टिप्पणी—३ *'प्रभुता तजि……'* इति। (क) अपना बड़प्पन त्यागकर सेवकपर स्नेह किया। भाव कि प्रभुता स्वामीको सेवकके घर जानेसे रोकती है, मनमें यह विचार होता है कि हम स्वामी होकर सेवकके घर कैसे जायँ, उस खयालको छोड़कर आपने मुझपर कृपा की (अर्थात् यह विचार न करके कि राम आपका शिष्य है, आपने वात्सल्य भावको प्रधान रखा और शिष्यके घर पधारकर उसको पवित्र किया। 'प्रभुता—वसिष्ठजीकी प्रभुताका क्या कहना! क्योंकि वे अखिलेश्वरके भी गुरु हैं और इक्ष्वाकुकुलके तो आदिसे गुरु हैं ही। उनके सम्बन्धमें देवताओंके वचन हैं कि *'बड़ बसिष्ठ सम को जग माहीं।'* (२४३। ८) और श्रीभरतजीने भी कहा है *'सो गोसाइँ बिधि गति जेहिं छेकी। सकइ को टारि टेक जो टेकी॥'* (२५५। ८) [(ख)—यहाँपर वसिष्ठजीकी निषादराजसे भेंटका मिलान कीजिये। यथा—*'प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि तें दंड प्रनामू॥ रामसखा रिषि बरबस भेंटा। जनु महि लुठत सनेह समेटा॥ रघुपति भगति सुमंगलमूला। नभ सराहिं सुर बरषहिं फूला॥ एहि सम निपट नीच कोउ नाहीं। बड़ बसिष्ठ सम को जग माहीं॥'* (२४३। ४। ८) यही प्रभुताका भाव है अर्थात् कहाँ आप ऐसे बड़े और कहाँ हमलोग। इसी प्रकार भरत-निषाद-मिलनपर सुरगण प्रेमकी प्रीतिकी प्रशंसा करते थे, यथा—*'लोग सिहाहिं प्रेम कै रीती।'* (१९४। १) स्नेह प्रेममें मर्यादा, प्रभुत्व इत्यादिका उलङ्घन तो अवश्य ही होता है, बिना इसके मनमें प्रेम कहाँ?]। (ग)—*'भयउ पुनीत आजु……'* आज यह घर पवित्र हुआ। इससे सूचित हुआ कि गुरु वसिष्ठजी इसके पूर्व इस घरमें नहीं आये थे, आज ही प्रथम-प्रथम आये हैं। यह श्रीरामजानकीजीका एकान्त स्थान

है यह समझकर न आते थे (आज राजाके भेजनेसे आये और श्रीरामजी जब महलमें ले गये तभी गये)। *'यह गेहू'*—भाव कि आपने और-और घरोंको जा-जाकर पवित्र किया, आज यह घर भी पवित्र हुआ।

४—*'आयसु होइ सो करौं'''* इति। भाव यह कि मैं सेवक हूँ और आप स्वामी हैं, आपकी सेवा मुझे मिलनी चाहिये। आज्ञाके समान दूसरी सेवा नहीं है, अतः कहा कि *'आयसु होइ सो करौं'।* स्वामीकी आज्ञा सेवकके लिये प्रसाद है, इसीसे सेवा माँगते हैं, यथा—*'आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। सो प्रसाद जन पावै देवा॥'* (३०१।४) प्रथम *'गोसाईं'* सम्बोधन देकर फिर *'स्वामी'* कहा, इससे दोनों शब्दोंको पर्याय जनाया। (*'लहना'* शब्दके दो अर्थ होते हैं 'पाना, प्राप्त करना और शोभा पाना'। यहाँ दोनों अर्थोंमें इसका प्रयोग हुआ है। आज्ञा दीजिये, मैं तुरत उसका पालन करूँ, इसी बहाने आज सेवा मिले। सेवासे ही सेवककी शोभा है। स्वामीकी सेवा करनेसे सेवक शोभाको प्राप्त होता है, उसे यश और धर्मादि फलोंकी प्राप्ति होती है)।

नोट—मयङ्ककार कहते हैं कि 'ये वचन बड़े गूढ़ हैं। (१)—इनका तात्पर्य है कि आपका मेरे भवनमें आना मङ्गलमूल और अमङ्गलनाशक है तथापि हे नाथ! मेरे लिये यही उचित है कि आप बुलाकर प्रीतिपूर्वक जो कार्य है उसके लिये मुझे भेजिये। इसमें यह ध्वनि निकलती है कि अन्यत्र भेजिये। वसिष्ठजीका आगमन वन-गमनका कारण है जो पृथ्वी, विप्र और देवतादि सबके लिये मङ्गलप्रद है, वह मङ्गल इनके आनेसे हुआ और राज्याभिषेकरूपी अमङ्गलका नाश हुआ। वह राजाके लिये अमङ्गल था; क्योंकि राज्य देनेसे राजाका धर्म जाता। पुनः, यदि रामजी राजशासनमें लग जाते तो भूमि-भार न उतरता। यह अमङ्गल-नाश हुआ। पुनः *'काजको पठाइये'* इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि श्रीरामचन्द्रजी वन जानेको कहते हैं, जो महान् कार्य है। अन्य अर्थ ठीक नहीं; क्योंकि अन्यथा गुरुका आगमन मङ्गल-मूल तो होता नहीं।' (२) *'आयसु होइ'''''* में यह ध्वनि है कि पृथ्वीपर भार है, भरत भी नहीं हैं और राज छोटा है, मैं वन जाकर रावणको मारकर सुग्रीव-विभीषणको राजा बनाकर तब अपने राजपर विराजूँ। यही आज्ञा दीजिये जिससे मैं सेवकाईको प्राप्त होऊँ।''''''*'जौं बिधि निबाहइ'''* से भी यह भाव पुष्ट होता है। गुरु कहते हैं कि कार्यमें संदेह है; क्योंकि श्रीरामचन्द्रजीने गुरुको वन-गमन सूचित कर दिया था।

अ० दी० कार कहते हैं कि गूढ़ आशय यह है कि आज तो यह भवन पवित्र हुआ; किंतु कल सबेरे ही यह भयानक हो जायगा अर्थात् वनयात्रा होगी। इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीने गुरुजीको अपनी वनयात्रा जनायी, यह ऐश्वर्य है। (अ० दी० च०)

टिप्पणी—५ इस चौपाईमें परस्पर अन्योन्य प्रेम दिखाया। *'प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू'* यह गुरुकी प्रीति सेवकपर और *'सेवक लहइ स्वामि सेवकाई'* यह सेवककी प्रीति गुरुमें दिखायी।

दो०—सुनि सनेह साने बचन मुनि रघुबरहि प्रसंस।
राम कस न तुम्ह कहहु अस हंस बंस अवतंस॥९॥
बरनि राम गुन सील सुभाऊ। बोले प्रेम पुलकि मुनिराऊ॥१॥

शब्दार्थ—**प्रसंस**=प्रशंसा करने लगे। **हंस**=सूर्य। **अवतंस**=भूषण। **साने**=युक्त, मय, पूर्ण।

अर्थ—प्रेममें सने हुए वचनोंको सुनकर वसिष्ठमुनि रघुकुलश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीकी बड़ाई करने लगे—'हे राम, तुम ऐसा क्यों न कहो! तुम तो सूर्यवंशके भूषण हो॥९॥ रामजीके गुण, शील और स्वभावका वर्णनकर मुनिराज प्रेमसे प्रफुल्लित हो बोले॥१॥

टिप्पणी—१ *'सुनि सनेह साने बचन'''* इति। (क) श्रीरामजीके सब वचन स्नेहयुक्त हैं, अतः *'सनेह साने'* कहा। (स्नेहको पाग वा जल जनाया जिसमें साने गये)। वचन सुनकर वसिष्ठजीने प्रशंसा की, जैसे परशुरामजीने की थी, यथा—*'जयति बचन रचना अति नागर।'* [(ख) *'कस न तुम्ह कहहु अस'*—अर्थात् ये वचन आपके योग्य ही हैं। इन शब्दोंमें अ० रा० के **'इदानीं भाषसे यत्त्वं लोकानामुपदेशकृत्।'** (२।२।२३) (अर्थात् गुरुके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये, संसारको यह उपदेश करनेके लिये ही आपने ऐसे

वचन कहे हैं) का भाव भी सूचित कर दिया।] (ग) *'हंस बंस अवतंस'*—भाव कि सूर्यवंश धर्मात्मा है, आप उसके भूषण हैं। [भाव कि उत्तम कुलवाले उत्तमाचरणके होते ही हैं। आप सूर्यवंशमें अवतरित हुए जो धर्म, सत्य, शील, विनय आदि गुणोंसे युक्त हैं। इसमें इक्ष्वाकु, रघु आदि महात्मा राजा हुए और आप तो उन सबोंके भूषण हैं, अत: ऐसा प्रेमयुक्त विनम्र भाषण आपके योग्य ही है। कारणके समान कार्यका वर्णन 'दूसरा सम अलङ्कार' है। (प्र० सं०)]

टिप्पणी—२ *'बरनि राम गुन सील……'* इति। (क) प्रथम श्रीरामजीका स्नेह कहा, अब शील कहते हैं। दोनोंको कहनेका भाव कि श्रीरामजी शील और स्नेह दोनोंको निबाहते हैं, यथा—*'को रघुबीर सरिस संसारा। सील सनेह निबाहनहारा॥'* गुरुको आगे चलकर मिले और प्रणाम किया, यह शील है, यथा— *'सील सिंधु सुनि गुरु आगवनू।……चले सबेग राम तेहि काला॥'* (२४३। १-२) स्नेह तो सभी वचनोंमें भरा हुआ है। स्वभावका वर्णन, यथा—*'सील सकुचि सुठि सरल सुभाऊ। कृपा सनेह सदन रघुराऊ॥'* (१८३। ५), *'करुनामय मृदु राम सुभाऊ॥'* (४०। ३) इत्यादि। (ख) *'बोले प्रेम पुलकि……'* इति। रामराज्यकी वार्ता करनेमें मुनिको हर्ष होता है, यथा—*'सुनि मुनि दसरथ बचन सुहाये। मंगल मोद मूल मन भाये॥ हरषि मुनीस कहेउ मृदु बानी। आनहु सकल सुतीरथ पानी॥'* (२। ४। ६, २। ६। १) तथा यहाँ [*'प्रेम पुलकि'* से विरह सूचित किया। (खर्रा)]

भूप सजेउ अभिषेक समाजू। चाहत देन तुम्हहि जुबराजू॥ २॥
राम करहु सब संजम आजू। जौं बिधि कुसल निबाहै काजू॥ ३॥

शब्दार्थ—संजम=(संयम—सम्=अच्छी तरह+यम्=रोकना) ब्रह्मचर्य, नेम, व्रत इत्यादिका पालन जो ऐसे अवसरपर नीतिमें कर्तव्य कहे गये हैं। संयम दस माने गये हैं, यथा—**'अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं दयार्जवम्। क्षमा धृतिर्मिताहार: शुचिश्च संयमा दश।'**—विशेष (१। ३७। १४) में देखिये। जौं=जो, यदि, जिसमें।

अर्थ—राजाने तिलकका सामान सजाया (किया) है, तुमको युवराज्य देना चाहते हैं॥ २॥ राम! आज सब प्रकारका संयम करो जिससे [वा यदि] विधाता कुशलसे कार्य निबाह दे॥ ३॥

टिप्पणी—१ (क) *'भूप सजेउ……'* इससे सूचित किया कि इसमें हमारा सम्मत नहीं है। हमसे उन्होंने सामग्री जुटानेकी आज्ञा माँगी, वह हमने दी। [राजाने मुझसे अपनी रुचि कही, मैंने उसका अनुमोदन मात्र किया]। *'सब संजम'* से जनाया कि संयम बहुत हैं। (क्या संयम श्रीरामजीने किये यह पूर्व *'राम धाम सिख देन पठाए।'* (९। १) में लिखा गया है। वहीं देखिये)। (ख) राजा राज्य देना चाहते हैं, इसमें दिनका नियम न हुआ कि कब देना चाहते हैं, अत: *'करहु सब संजम आजू'* से दिन निश्चित कर दिया। अर्थात् आज संयम करो, कल सबेरे युवराज्य देना चाहते हैं। कल मुहूर्त है। (ग) गुरुजीने राजाकी अभिलाषा सुना दी, अपनी आज्ञा न कही, प्रत्युत *'जौं'* शब्द देकर राजाकी अभिलाषाकी सिद्धिमें संदेह जनाया। वसिष्ठजी भावी लीलाको जानते हैं, इसीसे उन्होंने ऐसा कहा। [(घ) *'जौं बिधि……'* में उक्ताक्षेपकी ध्वनि है। संदिग्ध गुणीभूत व्यंग है कि संयम कीजिये, कदाचित् कार्य पूरा होगा कि नहीं। (वीर) कोई-कोई *'जौं'* का अर्थ 'जिससे' करते हैं। अ० रा० में मुनिने कहा है कि मैं जानता हूँ कि आपने देवकार्य सिद्ध करने, भक्तोंकी भक्ति सफल करने और रावणवधार्थ अवतार लिया है। तथापि देवकार्य सिद्धिके लिये मैं इस गुप्त रहस्यको प्रकट नहीं करता, 'तुम शिष्य हो मैं गुरु हूँ' इसी सम्बन्धके अनुकूल मैं व्यवहार करता हूँ। (२।२।२४-२५)। *'जौं'* में ध्वनिसे यह सब आ जाता है।]

गुरु सिख देइ राय पहिं गयऊ। राम हृदय अस बिसमउ भयऊ॥ ४॥
जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई॥ ५॥
करनबेध उपबीत बिआहा। संग संग सब भयउ* उछाहा॥ ६॥
बिमल बंस यह अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू॥ ७॥

* 'भये' (भागवतदास, काशीजी)। भए—गी० प्रे०।

शब्दार्थ—**बिसमउ**=आश्चर्य—इस शब्दमें शङ्का, भय और आश्चर्य तीनों मिले होते हैं। केलि=खेल। **सयन**=शयन, सोना। **लरिकाई**=लड़कपनके कृत्य। **करनबेध** (कर्णवेध)=कनछेदन संस्कार। **उपबीत**=जनेऊ, यज्ञोपवीत।

अर्थ—(उधर तो) शिक्षा देकर गुरुके पास गये। (इधर) श्रीरामचन्द्रजीके मनमें ऐसा विस्मय हुआ—॥ ४॥ 'हम सब भाई एक साथ पैदा हुए। खाना, सोना और लड़कपनके खेल, कनछेदन, यज्ञोपवीत, ब्याह सभी उत्सव साथ-साथ हुए॥ ५-६॥ परन्तु इस निर्मल (रघु) वंशमें यही एक बड़ी अनुचित बात हो रही है कि अन्य भाइयोंको छोड़कर बड़ेहीका तिलक होता है॥ ७॥

☞ 'य' और 'व' के स्थानपर 'उ' का प्रयोग जहाँ-तहाँ बहुत किया गया है। जैसे—'हृदउ', 'बिसमउ'; प्रभाउ (प्रभाव), सुभाउ, राउ इत्यादि। इसी प्रकार क्रियाओंमें उकारान्त पाया जाता है जो विधि-क्रियाका रूप है पर उससे इंगितबोधक क्रियाका अर्थ लिया जाता है। जैसे—'देउ'=देवें! 'हरउ'=हरें!

टिप्पणी—१ (क) *'गुरु सिख देइ·····'* इति। राजाके पास गये, यह कहनेको कि हम श्रीरामजीको संयम करनेका उपदेश कर आये। (यथा—'**वसिष्ठोऽपि नृपं गत्वा कृतं सर्वं न्यवेदयत्।**' (अ० रा० २। २। ३९) (ख) ***'जनमे एक संग·····उछाहा'*** इति। जन्मसे लेकर विवाहतक सब भाइयोंके सब काम एक साथ हुए। शरीरके व्यवहार और संस्कार दो पृथक्-पृथक् बातें हैं, इसीसे इनको पृथक्-पृथक् वर्णन किया। जन्म, भोजन, शयन, केलि, लरिकाई—ये शरीरके व्यवहार हैं; अतः इनको एक पंक्तिमें रखा। कर्णवेध, उपवीत और विवाह संस्कार हैं, अतः इनको दूसरी पंक्तिमें रखा। ***'सब भए उछाहा'***—'सब' में चूड़ाकरण आदि जो-जो कहनेसे बच गये उनका ग्रहण भी हो गया। (ग) ***'जनमे एक संग'*** अर्थात् अवस्थामें भी बहुत तारतम्य नहीं और न व्यवहारमें ही; भोजन, शयन, केलि यावत् लड़कपन बीता तथा सभी उत्सवादि संग-संग हुए (बाबा हरिहरप्रसादजी शङ्का उठाकर कि 'जन्मकी तिथि और वार तो भिन्न-भिन्न हैं तब एक संग कैसे कहा?' उसका समाधान यह करते हैं कि पायसके विभाग राजाने एक साथ किये थे इसीसे एक सङ्ग कहा। हम बालकाण्डमें बता आये हैं कि तिथि और वारमें मतभेद है। मानसके मतसे एक ही दिन जन्म होना पाया जाता है)।

टिप्पणी—२ *'बिमल बंस यह अनुचित एकू।·······'* इति। (क) *'बिमल'* का भाव कि इस वंशके सभी कार्य उचित हैं, इससे इसका यश निर्मल है। आजतक जो कुछ भी हुआ वह उचित ही हुआ। ***'एकू'*** का भाव कि अबतक कोई भी अयोग्य कार्य वंशमें नहीं हुए, यही एक अनुचित कार्य हो रहा हैं। यह वंशको कलङ्कित करनेवाला है, यह कार्य निर्मल यशमें धब्बा लगा देगा, उसे मलिन वा दूषित कर देगा (ख) ***'बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू'***—बन्धुको छोड़कर बड़ेका अभिषेक हो यही अनुचित है। भाव कि हम बड़े हैं, यह बात हमारे लिये भी अनुचित है कि बड़े होनेसे हम ही राज्य ले लें और वंशके लिये भी अनुचित है, ऐसी बात वंशमें नहीं हुई। (ग) वसिष्ठजीने कहा था कि आप 'हंस-वंश-अवतंस' हैं, तब आप ऐसा क्यों न कहें। सूर्यवंशके भूषण हैं, अतएव निर्मल वंशमें अनुचित न तो स्वयं करेंगे और न होने ही देंगे। (प्रभु सोचते हैं कि भरतजी और शत्रुघ्नजी नहीं हैं, उनको खबर भी नहीं दी गयी, उनके बिना हमें राज्य लेना उचित नहीं, इसमें कुलकी निन्दा होगी।) क्योंकि भरतजीको खबरतक नहीं दी गयी।

नोट—१ बैजनाथजी लिखते हैं कि रामचन्द्रजीके कथनका भाव यह है कि यद्यपि वंशरीति है कि बड़ेको राज्य मिले तो भी भाइयोंसहित होना चाहिये अर्थात् भरतको नायबत, लक्ष्मणका कोषाध्यक्ष और शत्रुघ्नको जंडैली (सेनाकी सरदारी) इत्यादि सङ्ग ही होती तो वंशकी रीति सुहावनी रहती। दो भाई नहीं हैं, उनके सूनेमें हम राज्य न ग्रहण करेंगे।

नोट—२ श्रीपार्वतीजीके *'राज तजा सो दूषन काही'* इस प्रश्नका यहाँ सूक्ष्म रीतिसे उत्तर है। इसीसे राज्य स्वीकार न किया गया। देवमाया और उनका विघ्न सबका मूल यही अर्धाली है—***'बिमल बंस यह अनुचित एकू।····।'*** इसी दूषणसे राज्यका त्याग किया।

शङ्का—'*बिमल बंस*' कहकर वंशको निष्कलङ्क बताना और फिर उसमें 'एक अनुचित' भी कहना, दोनों बातोंका क्या समन्वय है? यदि ज्येष्ठ पुत्रको राज्याभिषेककी यह कुलपरम्परा अनुचित थी तो स्वयं मर्यादापुरुषोत्तमने ही इसे क्यों स्वीकार किया?

समाधान—भगवान् सूर्यके पुत्र श्राद्धदेव वैवस्वत मनु संसारके सभी क्षत्रियोंके आदिपुरुष हैं। उन्होंने धर्मशास्त्रका भी प्रवचन किया है जो मानव-धर्मशास्त्रके नामसे प्रख्यात है। उनका सर्वप्रथम वंश सूर्यवंशके नामसे लोकविश्रुत है। आगे चलकर सुद्युम्न-(इला-) के द्वारा इसी सूर्यवंशसे चन्द्रवंशकी नींव पड़ी। सूर्यवंशमें इक्ष्वाकु, मान्धाता, सगर, ककुत्स्थ, रघु आदि परम प्रतापी अयोध्यानरेशोंके कारण अयोध्यावाली परम्पराका सर्वोच्च स्थान रहा है। वहाँके सभी व्यावहारिक कार्य यद्यपि ब्राह्मणधर्मशास्त्रकारोंके आज्ञानुसार ही होते थे, तथापि राजनीतिमें अपने पूर्वपुरुषकी ही निर्धारित नीतिको प्रधानता रहती थी। मनुने पैतृक सम्पत्तिके सम्बन्धमें बड़े पुत्रको ही स्वत्वाधिकारी होनेका निर्देश किया है और वही नीति-रीति सूर्यवंशमें सदैवसे प्रचलित भी थी। महाराज दशरथने भी अपनी सफाई देते हुए कहा था कि '*मैं बड़ छोट बिचारि जिय करत रहेउँ नृपनीति।*' कैकेयीजीने भी देवमायाभिभूत होनेके पूर्व यही कहा था—'*जेठ स्वामि सेवक लघुभाई। यह दिनकर कुलरीति सुहाई॥*' और देवमायाभिभूत होते हुए भी मन्थराने कहा है—'*यह कुल उचित राम कहुँ टीका।*' (१८। ७) अतः यह मानव-धर्मशास्त्रकारकी ही प्रचलित की हुई सूर्यवंशकी कुलपरम्परागत रीति-नीति मर्यादा कि '*अनुज बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू।*' अतः मनुके मन्तव्यानुसार बड़ेको अभिषेक होना अनुचित नहीं है।

गौतम, याज्ञवल्क्य और शङ्ख आदि ब्राह्मण धर्मशास्त्रकारोंका निर्देश है कि सम्पत्तिमें सब भाइयोंको बराबर-बराबर भाग मिलना चाहिये। इन शास्त्रकारोंकी आज्ञाके समक्ष परम ब्रह्मण्य श्रीरामजीने कुलरीतिको '*एक बड़ अनुचित*' कहा है। परंतु ऐसा कहते हुए भी उसके अनुचित न होनेसे पारस्परिक मर्यादाके कार्यक्रमको पालन करनेके कारण श्रीरामजीका मर्यादापुरुषोत्तमत्व अक्षुण्ण ही बना रहा। (वे० भू० पं० रामकुमारदास)।

प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई। हरउ भगत मन कै कुटिलाई॥८॥

शब्दार्थ—**पछितानि**=पश्चात्ताप, पछतानेका भाव, पछतावा। **कुटिलाई**=कुटिलता, टेढ़ापन।

अर्थ—प्रभुका प्रेमपूर्ण यह सुन्दर पछतावा भक्तोंके मनकी कुटिलताको हरण करे॥८॥

नोट—१ (क) यहाँ ग्रन्थकार प्रभुके इस पश्चात्तापकी प्रशंसा कर रहे हैं। आपका प्रेम भाईपर है। कुलका धर्म रक्षित करना आपका धर्म है और तनसे पछतावा हो रहा है। कुटिलता राज्य ग्रहण करनेमें है। (ख) '*हरउ*' क्रियाका अर्थ 'हरण करे' है। पर इससे भूत और भविष्यमें भी हरण करना जनाते हैं। (ग) स्वार्थसाधन कुटिलता है, यथा—'*स्वारथ साधक कुटिल तुम्ह सदा कपट ब्यवहार।*' (१। १३६) भक्तोंके मनमें कदाचित् अपने भाई-बन्धु आदिके धन-हरण करनेकी कुटिलता आ जावे तो प्रभुके इन वचनोंके स्मरणसे वह दूर हो जावेगी; अतः '*पछितानि*' को '*सुहाई*' कहा। (बाबा रामप्रतापदास)

टिप्पणी—१ '*सप्रेम पछितानि*' का भाव कि केवल वंशके अनौचित्यका पछतावा नहीं है; किन्तु उनका यह पछतावा प्रेमयुक्त है। उनका श्रीभरतजीपर (छोटे भाइयोंपर) प्रेम है, इसीसे वे सोचते हैं कि उनको छोड़कर हम राज्य कैसे ग्रहण करें, यह उनका सप्रेम पछिताना है। यह '*पछितानि*' सप्रेम है और भक्तोंके मनकी कुटिलताको हरण करनेवाली है; अतएव '*सुहाई*' है। '*सुहाई*' देहली-दीपक है।

भक्तके मनकी कुटिलता क्या है? यह कि भक्त श्रीरामजीको छोड़कर कुछ भी अङ्गीकार नहीं करते और श्रीरामजीने भरतजीको छोड़कर राज्यको अङ्गीकार कर लिया, ऐसा करना स्वामीको उचित नहीं, भक्तके मनकी इस कुटिलताको हरण करता है। [पुनः, भक्तोंके मनकी कुटिलता यह है कि वह दूसरोंकी आशा कभी-कभी करने लग जाता है। इस कुटिलताको यह '*सप्रेम पछितानि*' हरे। कैसे हरेगी? इस तरह कि श्रीरामजीने अपने भक्त भरतके बिना राज्य स्वीकार न किया, भक्तपर ऐसा छोह करनेवाले स्वामीको छोड़कर दूसरेका आशा-भरोसा न करना चाहिये। (खर्रा)]

पं० विजयानन्द त्रिपाठीजी—'*अस सुभाउ कहुँ सुनउँ न देखउँ। केहि खगेस रघुपति सम लेखउँ॥*' सरकारके दिव्य कर्म हैं, यथा—'**जन्म कर्म च मे दिव्यम्।**' (गीता ४।९) नरलीला करनेमें पछताना भी पड़ता है। सरकारके पछतानेमें भी दिव्यता है। संसार चूक करके पछताता है, पर उनसे चूक नहीं होती। नीति, प्रीति, परमार्थ और स्वार्थमें जब सामञ्जस्य बिठानेमें स्वभावके विरुद्ध चलना पड़ता है, तब पछताते हैं। प्रभु ब्रह्मण्यदेव हैं, ब्राह्मणोंमें उनकी अगाध भक्ति है। जब अहल्याको तारनेमें उसे पैरसे छूना पड़ा तब पछताये, यथा—'*दई सुगति सो न हेरि हरष हिय चरन छुए को पछिताउ*' (विनय०)। इसी भाँति यहाँ पिताकी इच्छा और गुरुकी शिक्षासे अभिषेक स्वीकार किया, पर अकेले अपने ही अभिषेकपर पछताते हैं। अतः यह पछतावा भी सुन्दर है, दिव्य है। कवि कहते हैं कि इस पछतावेसे रामोपासकोंको शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। प्रभुकी सरलताका अनुमान सेवकका धर्म है। प्रभुके सभी उपासकोंमें भाई-भाईका नाता है। अपना उत्कर्ष होनेपर औरोंके लिये दुःखी न होना भी भक्तोंके लिये कुटिलता है। अतः कवि प्रार्थना करते हैं कि प्रभुका इस प्रकारका पछतावा भक्तके मनकी कुटिलताको हरण करे।

श्रीनंगे परमहंसजी—'भक्तोंके मनमें केकयीके सम्बन्धमें यह कुटिलता आती है कि उसने श्रीरामजीका राज्य भरतको दे दिया, यह अच्छा न किया। पर जब श्रीरामजी ही राज्यको पसंद नहीं करते, भरत आदिको भी चाहते हैं तब भक्तोंके मनमें राज्य लेनेकी कुटिलता नहीं आ सकती।' (नं० प० जीने '*हरेउ*' पाठ दिया है)।

विनायकी टीकाकार—भक्त किंवा उसका अपभ्रंश भगतका एक अर्थ 'हिस्सा बाँट' करना है सो रामचन्द्रजीने इस बातपर पछतावा किया कि छोटे भाइयोंको छोड़ जो केवल मुझहीको राजतिलककी तैयारी है यह अनुचित जँचती है। इस पश्चात्तापको सुनकर उन भाइयोंको शिक्षा लेनी चाहिये जो अपने भाइयोंको धोखा दे धन-सम्पत्तिका भाग बँटवारेमें आप ही अधिक ले लेना चाहते हैं।

वीरकविजी—'*हरउ*……' में लक्षणामूलक गूढ़ ध्वनि है कि जिन भक्तोंके हृदयमें अन्य देवी, देवता और स्वामियोंके प्रति आशारूपी पिशाचिनी वर्तमान है, वे इस टेढ़ाईको त्याग देंगे। राज्य पानेका समाचार सुनकर प्रसन्न नहीं हुए वरन् भाइयोंके लिये पछताने लगे। अपने भक्तोंपर इतनी बड़ी कृपा रखते हैं, ऐसा उदार और दयालु स्वामी तीनों लोकोंमें कोई नहीं है। इस स्वभावको समझकर भक्तजन श्रीचरणोंके सिवा भूलकर अन्यत्र प्रेम न करेंगे।'

पंजाबीजी—यह गोस्वामीजीका एक प्रकारसे भक्तोंको आशीर्वाद है।

पं० रामचन्द्र शुक्ल—कोइ आदमी कुटिल है; सरल कैसे हो? गोस्वामीजी कहते हैं कि रामजीकी सरलताके अनुभवसे। रामके अभिषेककी तैयारी हो रही है। इसपर राम सोचते हैं—'***जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई॥ बिमल बंस यहु अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू॥***'

भक्तशिरोमणि तुलसीदासजी याचना करते हैं कि रामका यह प्रेमपूर्वक पछताना भक्तोंके मनकी कुटिलता दूर करे—'***प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई। हरउ भगत मन कै कुटिलाई॥***'

रामकी ओर प्रेमकी दृष्टि पड़ते ही मनुष्य पापोंसे विमुख होने लगता है। जो धर्मके स्वरूपपर मुग्ध हो जायगा, वह अधर्मकी ओर फिर भरसक नहीं ताकने जायगा। भगवान् कहते हैं—'***सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जनम कोटि अघ नासौं तबहीं॥ पापवंत कर सहज सुभाऊ। भजन मोर तेहि भाव न काऊ॥***'

☞ '……तू रामके मनोहर रूप, गुण, शक्ति और शीलको बारबार अपने अन्तःकरणके सामने रख; बस राम तुझे अच्छे लगने लगेंगे। शीलको शक्ति और सौन्दर्यके योगमें यदि तू बार-बार देखेगा तो शीलकी ओर भी क्रमशः आप-से-आप आकर्षित होगा। यह मार्ग कैसा सुगम है?……।'

मानसमयङ्क—भाव यह कि 'भक्तके लिये श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकार पछता रहे हैं, यह समझनेसे भक्तोंकी कुटिलता दूर हो जायगी। भरत बिना राजाको देखकर श्रीरामचन्द्रने देवताओंके लिये शारदाको प्रेरितकर राज्यको त्याग दिया। पुनः भक्तके बिना राज्यके सुखको क्षणभङ्गुर समझकर त्याग दिया और ऐसे शोचरत हो गये मानो विपत्तिके घरमें पड़ गये।

नोट—२ ये वचन बड़े गूढ़ हैं। राजा केकय-राजसे केकयीके पुत्रको राज्य देनेके लिये प्रतिज्ञाबद्ध हो चुके थे। यह बात राजा और वसिष्ठजीहीके बीचमें थी, वसिष्ठजीहीने सम्मति दी थी कि प्रतिज्ञा कर लो, जब पुत्र होगा, देखा जायगा, वह पुत्र बड़ा धर्मज्ञ होगा। यह भी प्रधान कारण है कि वसिष्ठजी राजासे न यही कह सके कि तिलक करना उचित नहीं और न यही कि अवश्य उनको युवराज बनाओ। दोनोंमें वे पकड़े जाते थे। इसीसे श्लिष्ट वचनोंका प्रयोग उनकी आज्ञामें हुआ है। रामजी सर्वज्ञ हैं, अतः वे भी इस प्रतिज्ञाको जानते हैं, जैसे—*'अनुज बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू'* से प्रमाणित होता है। *'बिहाइ'* शब्द बड़ा विलक्षण है। इससे भरतजीका इस उत्सवके समय बाहर कर दिया जाना भी व्यञ्जित हो सकता है। ऐसी दशामें रामजी राज्यको ग्रहण करना अत्यन्त अनुचित समझते हैं।

इधर राजाने मनुस्मृतिके **'विनीतमौरसं ज्येष्ठं यौवराज्येऽभिषेचयेत्'** अर्थात् 'राजा सुशील विनम्र जेठे पुत्रको युवराज बनावे' इस वाक्यानुसार रामजीको युवराज बनाना चाहते हैं। साधारणतः राज्यका उत्तराधिकारी जेठा पुत्र ही होता था, यह स्वयं केकयीजीने कही है—*'जेठ स्वामि सेवक लघु भाई। यह दिनकर कुलरीति सुहाई॥'* और राजा इस नीतिका पालन भी करना चाहते थे, यथा—*'लोभ न रामहिं राज कर बहुत भरत पर प्रीति। मैं बड़ छोट बिचार करि करत रहेउँ नृपनीति॥'* साथ-ही-साथ राजा यह भी जानते हैं कि युवराज बनानेमें प्रजाका भी पूर्ण अधिकार है। इसीसे उन्होंने राज्याधिकार वंशपरम्परागत होते हुए भी सभा जोड़ी और सर्वसम्मतिसे तिलकका निश्चय किया। क्यों? राजा वही हो जिसमें सब प्रजाका विश्वास हो कि इससे हमारा रञ्जन होगा, यह हमारे दुःख-सुखको अपना ही दुःख-सुख समझेगा। सभी इनसे खुश हैं। सभी प्रजा इनको अपना राजा चाहती है। यह तो ग्रन्थहीसे स्पष्ट है। राजा खूब समझते हैं कि भरतजीसे प्रजारञ्जन उतना नहीं हो सकता। अतएव इन विचारोंसे राज्याभिषेककी सूचना नगरभरको दे दी गयी। उस कालकी आदर्श राजनीतिकी और उसकी उत्कृष्टताका चित्र यहाँ इस चरितमें झलक रहा है। अब राजा दो सत्य वाक्योंके बन्धनमें पड़े हैं। रामजीके *'बिमल बंस…'* इन वचनोंसे सूचित होता है कि वे पिताकी इस कार्यवाहीको अनुचित समझते हैं, उनके विचारमें राजाको प्रतिज्ञाका उल्लंघन करना उचित नहीं, सत्यपर आरूढ़ रहना चाहिये; ऐसा न होनेसे धार्मिक शासन सुदृढ़ नहीं रह सकता, जिससे राजनैतिक शासनमें भी हानि पहुँचेगी। पर राजा क्या करें? इस उलझनसे श्रीरामचन्द्रजीहीने उनको बचाया। लोकशिक्षाकी दृष्टिसे *'प्राण जाइ बरु बचन न जाई'* इसका उन्होंने महाराजसे पालन कराकर विमल वंशको कलङ्कसे भी बचाया, प्रजाको धर्मशिक्षा भी दी, पुत्र-धर्मका भी पालन किया। ऐसा न होनेसे ही तो भाई-भाईमें शत्रुताका बीज पड़ जाता है।

श्रीरामचन्द्रजी धर्मशास्त्र कह रहे हैं—छोटे भाईको भी साथमें रहना चाहिये जैसे हम चारोंके और सब संस्कार साथ हुए वैसे ही यह भी होना चाहिये।

कुछ महानुभाव कहते हैं कि *'हरउ भगत मन की कुटिलाई'* में गूढ़ व्यङ्ग है कि दशरथजी कुटिलता कर रहे हैं। वह इससे हरण होगी। पर मेरी समझमें राजापर कुटिलताका आरोप करना ठीक नहीं। अपने विचार मैं पूर्व प्रकट कर चुका हूँ।

दो०—तेहि अवसर आए लखन मगन प्रेम आनंद।
सनमाने प्रिय बचन कहि रघुकुल कैरव चंद॥१०॥

बाजहिं बाजन बिबिध बिधाना। पुर प्रमोद नहिं जाइ बखाना॥ १॥

शब्दार्थ—**सनमाने**=सम्मान किया, आदर किया। **कैरव**=कुमुद, कोई, कोकाबेली। **रघुकुल कैरव चंद**=रघुकुलरूपी कैरवको खिलाने अर्थात् आनन्द देनेके लिये चन्द्ररूप श्रीरामचन्द्रजी। कोई चन्द्रमाको देखकर खिल उठती है, वैसे ही रघुकुलके लोग श्रीरामचन्द्रजीको देखकर प्रफुल्लित होते हैं। **'बाजन'**=बाजे।

अर्थ—प्रेम और आनन्दमें मग्न श्रीलक्ष्मणजी उसी समय आये। रघुकुल-कैरवचन्द्र श्रीरामजीने प्रिय

वचन कहकर उनका आदर-सत्कार किया॥ १०॥ अनेक प्रकारके बाजे अनेक भाँतिसे बज रहे हैं। नगरका अत्यन्त आनन्द वर्णन नहीं किया जा सकता॥ १॥

टिप्पणी—१ *'तेहि अवसर'''* इति। (क) *'तेहि अवसर'* अर्थात् जब गुरुजी संयमका उपदेश देकर राजाके पास चले गये (तथा श्रीरामजीके मनके विचार समाप्त हुए) तब। (ख) *'आए लखन मगन प्रेम आनंद।'*—*'आए'* कहकर उसका कारण बताया कि 'प्रेम और आनन्दमें मग्न हैं', अर्थात् राज्याभिषेक सुनकर वे प्रेमानन्दमें मग्न हो गये, इसीसे आये। यथा—*'बालसखा सुनि हिय हरषाहीं। मिलि दस पाँच रामपहँ जाहीं॥ पूछहिं कुसल खेम मृदु बानी।'* (२४। १-२)

नोट—१ (क) वाल्मीकीय और अ० रा० में *'राम हृदय अस बिसमय भयऊ।''''प्रेम आनंद।'* यह प्रसङ्ग नहीं है। अ० रा० में गुरुजीके चले जानेके बाद लक्ष्मणजीको देखकर प्रिय वचन कहना लिखा है। इससे उसी समय आगमन अनुमानित होता है। (ख)*'सनमाने प्रिय बचन कहि'*—अर्थात् कहा कि 'हे सुमित्रानन्दन! कल मेरा युवराज-पदपर अभिषेक होगा, सो मैं तो केवल निमित्तमात्र ही होऊँगा, उसके कर्ता-भोक्ता तो तुम ही हो, क्योंकि मेरे बाह्यप्राण तो तुम्हीं हो। मेरे साथ तुम इस पृथ्वीका शासन करो, तुम मेरे दूसरे अन्तरात्मा हो, यह लक्ष्मी तुम्हें प्राप्त हुई है। लक्ष्मण! वाञ्छित भोग और राज्यफल भोगो। मेरा यह जीवन और राज्य तुम्हारे लिये है।' यथा—**'सौमित्रे यौवराज्ये मे श्वोऽभिषेको भविष्यति। निमित्तमात्रमेवाहं कर्ता भोक्ता त्वमेव हि॥ मम त्वं हि बहिःप्राणो नात्र कार्या विचारणा।'** (अ० रा० २। २। ३७-३८) **'लक्ष्मणेमां मया सार्धं प्रशाधि त्वं वसुन्धराम्। द्वितीयं मेऽन्तरात्मानं त्वामियं श्रीरुपस्थिता॥ सौमित्रे भुङ्क्ष्व भोगांस्त्वमिष्टान् राज्यफलानि च। जीवितं चापि राज्यं च त्वदर्थमभिकामये॥'** (वाल्मी० २। ४। ४३—४४) प्रिय वचन कहे और मुसकराते हुए कहे, यही सम्मान है यथा—**'रामो भ्रातरमब्रवीत्''''स्मयन्निव।'** (वाल्मी० २। ४। ४२) प्रेमसे आये हैं, अतः सम्मान किया, यथा—*'प्रभु आदरहिं प्रेम पहिचानी।'* (२४। २) (ग) *'रघुकुल कैरवचंद'* इति। ☞ जहाँ रघुकुलकी मर्यादा तथा कुल-व्यवहारको लिये हुए किसीका सत्कार करते हैं वहाँ प्रायः कुल-सम्बन्धयुक्त विशेषण देते हैं, यथा—*'राम कस न तुम्ह कहहु अस हंस बंस अवतंस॥'* (९)*'सनमाने सब रघुकुल दीपा।'* (२९६। २) तथा यहाँ *'सनमाने''''रघुकुल कैरवचंद।'* (प्रथम उदाहरणमें वसिष्ठजीका सम्मान करनेपर उन्होंने *'हंस बंस अवतंस'* कहा। दूसरेमें श्रीजनकमहाराज आदिका और यहाँ लक्ष्मणजीका सम्मान करनेपर कविने कुलसम्बन्धी विशेषण दिये (प्र० सं०)।

टिप्पणी—२ *'रघुकुल कैरव चंद'* इति। भाव कि जो बड़े हैं वे सबका सम्मान करते हैं, यथा—*'पुनि भानुकुलभूषन सकल सनमाननिधि समधी किये।'* (१। ३२६) *'सहित सभा संभ्रम उठेउ रबिकुल कमल दिनेस॥'* (२७४) (राजा भानुकुलभूषण हैं, अतः उन्होंने उस कुलके योग्य अत्यन्त सम्मान किया। इसी तरह श्रीरामजी 'रविकुलकमलके सूर्य हैं, रघुकुलकैरव चन्द हैं' अतः इन्होंने भी कुलके अनुकूल सम्मान किया। रा० प्र० कारका मत है कि 'चन्द्र कुमुद और चकोर दोनोंको सुख देता है। हनुमदादि चकोर प्रभुकी राह जोह रहे हैं, *'हरि मारग चितवहिं मतिधीरा।'* (१। १८८) प्रभु उनको भी सुखी किया चाहते हैं।' 'रघुकुलको कैरव कहा, इसीसे श्रीरामजीपर चन्द्रमाका आरोपण किया, क्योंकि चन्द्रमा कैरवको विकसित करता है, श्रीरामजीके इन गुणोंको देखकर कुल प्रफुल्लित होता है, उसकी कीर्तिकी वृद्धि होती है। अतः यहाँ 'परम्परितरूपक' है)।

नोट—२ *'बाजहिं बाजन''''पुर प्रमोद'''* इति। (क) पुरप्रमोदका प्रसंग *'राम राज अभिषेक सुनि हिय हरषे नर नारि।'* (दो० ८) पर छोड़ा था। बीचमें वसिष्ठजीका श्रीरामजीके यहाँ भेजा जाना, श्रीरामजीको संयमका उपदेश, श्रीरामजीके मनके विचार, लक्ष्मणजीका श्रीरामजीके पास जाना और सम्मान कहा। अब पूर्वसे प्रसंग मिलाते हैं—*'बाजहिं''पुर प्रमोद'''* (ख) *'बिबिध बिधाना'* अर्थात् अनेक प्रकारके बाजे, जैसे कि शङ्ख, ढोल, डिमडिमी, वीणा, निशान, शहनाई इत्यादि बज रहे हैं, यथा—*'हने निसान पनव बर बाजे। भेरि संख धुनि''।' झाँझि बीन डिंडिमी सुहाई। सरस राग बाजहिं सहनाई॥'* (१। ३४४) तथा अनेक रागरागिनियोंके साथ

बज रहे हैं, यथा—'*बिबिध बिधान बाजने बाजे।*' (१। ३४६) '*सरस राग बाजहिं""।*' (१। ३४४) (ग) '*न जाइ बखाना*'— वाल्मीकिजीने लिखा है कि जब वसिष्ठजी श्रीरामभवनसे निकले तो देखा कि अयोध्याकी सभी सड़कें पुरुषोंसे अत्यन्त भरी हुई हैं, उनपर चलना कठिन हो गया था। जनसमूहकी भीड़ और हर्षध्वनिसे सड़कें गूँज रही थीं, वहाँसे समुद्रके समान ध्वनि निकलती थी। सभी स्त्री-पुरुष अभिषेकके लिये उत्सुक, व्याकुल थे, चाहते थे कि शीघ्र सूर्योदय हो और हम राज्याभिषेक देखें। इत्यादि। (सर्ग ५ श्लोक १५ से २० तक) यह सब '*न जाइ बखाना*' से जना दिया, और भी उनका उत्साह सर्ग ६ श्लोक १० से २८ तक जो प्रात:समयका कहा गया, वह भी इसमें ले सकते हैं।

भरत आगमनु सकल मनावहिं। आवहु बेगि नयन फल पावहिं॥ २॥
हाट बाट घर गली अथाई। कहहिं परसपर लोग लोगाई॥ ३॥
कालि लगन भलि केतिक बारा। पूजिहि बिधि अभिलाषु हमारा॥ ४॥
कनकसिंघासन सीय समेता। बैठहिं रामु होइ चित चेता॥ ५॥

शब्दार्थ—**हाट** (हट्ट)=बाजार। **बाट**=रास्ता, मार्ग। '**गली**'=सँकड़ी या तंग रास्ता। **लोगाई**=स्त्रियाँ। **अथाई**=वह चबूतरा या बैठक, जहाँ बैठकर तहसील-वसूल की जाती थी। बुन्देलखण्डके महोबा आदिमें अबतक इस नामसे कई स्थान बोले जाते हैं। यह ठेठ बुन्देलखण्डी शब्द है। '**केतिक बारा**'=किस बेला, किस समय, कितनी देर है। **चित चेता**=चित्तमें विचारी हुई बात, मनभायी बात।

अर्थ—सभी भरतका आगमन मना रहे हैं। (मनाते हैं कि) शीघ्र आवें और नेत्रोंका फल पावें॥ २॥ बाजार, रास्ते, घर, गली, अथाई सभीमें स्त्री-पुरुष एक-दूसरेसे (यही) कह रहे हैं॥ ३॥ सुन्दर लग्न कल किस समय है? उसको कितनी देर है?* कि जब विधाता हमारी इच्छा पूरी करेगा। जब सोनेके सिंहासनपर श्रीसीतारामचन्द्रजी बैठेंगे और हमारा चित-चेता होगा—(यह कल कब होगा?† सभी ऐसा कह रहे हैं)॥ ५॥

नोट—१ '*भरत आगमनु सकल मनावहिं।""*' इति। (क) सब मनाते हैं, इससे सबोंका भरतजीपर अत्यन्त प्रेम दर्शित किया। '*मनावहिं*' अर्थात् देवताओंको मनाते हैं, मानता मानते हैं; क्योंकि समय थोड़ा होनेसे राजा उनको न बुला सके, केकयराज और जनक महाराजको इसीसे निमन्त्रण न भेज सके। यथा—'**न तु केकयराजानं जनकं वा नराधिपः। त्वरया चानयामास""**॥' (वाल्मी० २। १। ४८) और अपनेसे उनके आनेका कोई योग नहीं है। अतएव देवताओंको मनाते हैं कि वे कुछ ऐसा योग कर दें कि वे इस अवसरपर आ जायँ। नहीं तो केकयदेश बहुत दूर है, वे रातभरमें आ भी नहीं सकते। देवता प्रसन्न हों तो क्षणभरमें उन्हें यहाँ पहुँचा दें। (पर देवता कब सुनने लगे, भरत आ जायँ तो राज्याभिषेक ही हो जायगा। यह उनको कैसे सुहावे। वे तो विघ्नपर उतारू हैं)। (ख) '*आवहु बेगि*'—बेगि अर्थात् रातभरमें आ जायँ, क्योंकि सबेरे ही अभिषेक होनेको है। **आवहु**=आ जावें। (रा० प्र० कारका मत है कि सब पुरवासी विरहरसमें मग्न हैं इससे परोक्षको प्रत्यक्ष-सम कह रहे हैं। भरतजी यहाँ हैं नहीं, उनको '*आवहु*' कह रहे हैं अर्थात् आओ)। (ग) '*नयन फल पावहिं*'—श्रीरामराज्याभिषेकका देखना नेत्रोंके होनेका फल है, यथा—'*मोहि अछत यहु होइ उछाहू। लहहिं लोग सब लोचन लाहू॥*' (२। ४। ३)

नोट २—'*हाट बाट घर गली अथाई।""*' इति। इन चौपाइयोंसे मिलते हुए श्लोक अ० रा० में हैं। यथा—'**स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च रात्रौ निद्रां न लेभिरे। कदा द्रक्ष्यामहे रामं पीतकौशेयवाससम्॥ सर्वाभरणसम्पन्नं किरीटकटकोज्ज्वलम्। कौस्तुभाभरणं श्यामं कन्दर्पशतसुन्दरम्॥ अभिषिक्तं समायातं गजारूढं स्मिताननम्।**

* दीनजी इसका अर्थ यह करते हैं—'सब परस्पर यही कहते हैं कि अब क्या देर है। अर्थात् कुछ देर नहीं, कल ही विधाता हमारी इच्छा पूर्ण कर देंगे।'

† पं० रामकुमारजीने एक खर्रेमें यह अर्थ किया है—'स्वर्णसिंहासनपर चित्तमें प्रसन्न होकर श्रीरामजी बैठें, यही हमने चितमें चेत किया है'—यह पुरवासियोंने अपनी अभिलाषाका विवरण दिया।

श्वेतच्छत्रधरं तत्र लक्ष्मणं लक्षणान्वितम्॥रामं कदा वा द्रक्ष्यामः प्रभातं वा कदा भवेत्। इत्युत्सुकधियः सर्वे बभूवुः पुरवासिनः॥' (सर्ग ३। ३८—४१) अर्थात् उस रात्रिमें स्त्री, बालक और वृद्ध किसीको भी नींद नहीं आयी। सबको चटपटी लगी रही कि हम पीताम्बर धारण किये हुए श्रीरामजीको कब देखेंगे? जो समस्त आभूषणोंसे सुसज्जित उज्ज्वल किरीट और कटक पहने हुए हैं, कौस्तुभमणिसे विभूषित और सैकड़ों कामदेवोंके समान सुन्दर श्यामवर्ण हैं एवं सर्वसुलक्षण-सम्पन्न श्रीलक्ष्मणजीने जिनके ऊपर श्वेत छत्र लगा रखा है, ऐसे श्रीरामको राज्याभिषेकके अनन्तर मन्द मुसकानके सहित हाथीपर चढ़कर आते हुए हम कब देखेंगे? वह मङ्गल-प्रभात कब होगा? इस प्रकार सभी पुरवासियोंका चित्त उत्कण्ठित हो रहा था (मुख्य भेद मानस और अ० रा० में यह है कि मानसमें यह बात इस स्थानपर कही गयी है जहाँ राजा-रानी आदि सभीका मङ्गल-मोद कहा गया है और उचित भी है कि सबकी लालसा यहीं कही जाय, किंतु अ० रा० में यह बात सबेरा होनेपर कही गयी है। भरतागमनका मनाना वहाँ नहीं है)।

नोट ३—(क) ***'कालि लगन भलि·····'*** से पुरवासियोंकी अत्यन्त उत्कण्ठा दिखायी। यथा—**'इत्युत्सुकधियः सर्वे····'** (उपर्युक्त)। ***'कालि लगन भलि केतिक बारा'*** यहाँतक धैर्य धारण किये हुए वचन कहे, आगेसे ***'पूजिहि बिधि अभिलाषु हमारा'*** इन वचनोंसे प्रकट होता है कि अधीर होकर ऐसा कह रहे हैं। इससे उनका श्रीरामजीपर अत्यन्त स्नेह प्रकट होता है। इससे जनाया कि लग्नका समय पुरवासी भी नहीं जानते। कौसल्याजी भी नहीं जानती थीं, यथा—***'कहहु तात जननी बलिहारी। कबहिं लगन मुद मंगलकारी॥'*** (५२। ७) (पु० रा० कु०) इससे ज्ञात होता है कि सबको इतना ही समाचार दिया गया था कि कल युवराज होंगे, लग्न केवल गुरु और मन्त्रियोंको मालूम थी जिनसे अभिषेकके सम्बन्धमें सम्मत लिया गया था और जिनको यह कृत्य कराना था। (ख) ***'कनकसिंघासन सीय समेता।·····'*** इति। इसमें अ० रा० के उपर्युक्त उद्धरण श्लोक ३९, ४० के भाव आ गये। गोस्वामीजीने शोभाका वर्णन यहाँ उचित न समझा; क्योंकि वह शोभा कल देखनेमें न आवेगी, जब अभिषेक होगा तब शोभा भी कहेंगे, यथा—***'सिंघासन पर त्रिभुअन साईं।····भरतादि अनुज·····। गहे छत्र चामर ब्यजन······'*** इत्यादि। (ग) ***'कनकसिंघासन'*** राजा या देवताके बैठानेका आसन या चौकी। यह प्रायः काठ, सोने, चाँदी, पीतल आदिका बना होता है। इसके हत्थोंपर सिंहका आकार बना होता है।—(श० सा०) मणिजटित राजासनको नृपासन या भद्रासन कहते हैं, यदि यह नृपासन स्वर्णका हो तो उसे सिंहासन कहते हैं। साधारणतया सिंहासन भाषामें सोने-चाँदी सभी प्रकारके राज-आसनके लिये प्रयुक्त होता है; अतएव यहाँ ***'कनकसिंहासन'*** पद दिया, नहीं तो 'कनक' विशेषणकी आवश्यकता न थी। (घ)—सिंहासनका वर्णन यहाँ नहीं किया गया; क्योंकि इस समय राज्याभिषेक तो होना नहीं है। उत्तरकाण्डमें इसका वर्णन करेंगे। सिंहासनकी शोभा तभी थी जब राज्याभिषेक होता और श्रीसीतारामजी उसपर बैठते। जब वे अभी बैठेंगे ही नहीं तब उसकी शोभा कहना भी अयोग्य और व्यर्थ है। केवल रत्न आदिकी शोभा कोई शोभा नहीं है जब वह काममें न आया। (ङ) ***'सीय समेता'***—राज्याभिषेकके समय स्त्रीसहित सिंहासनपर बैठा जाता है, यथा—***'राम बाम दिसि सोभति रमा रूप गुन खानि।'*** (७। ११) ***'····जनकसुता समेत रघुराई। पेखि प्रहर्षे मुनि समुदाई॥····श्रीसहित दिनकरबंस भूषन काम बहु छबि सोहई।····'*** अतः ***'सीय समेता'*** कहा। (च) ***'चित चेता'*** यथा—***'सब के उर अभिलाषु अस····आपु अछत जुबराज पद रामहिं देउ नरेसु।'*** (१) उसी अभिलाषाकी यहाँ व्याख्या है।

श्रीरामराज्याभिषेक प्रसङ्ग यहाँ समाप्त हुआ।